ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

तन्वन् श्रीश्रुतिसिद्धसन्मतमहाग्रन्थप्रकाशप्रथाम्,
ब्रह्माद्वैतसमिद्धशङ्करगिरां माधुर्य्यमुद्भावयन् ।
अज्ञानान्धतमिस्ररुद्धनयनान् दिव्यां दृशं लम्भयन्,
भक्तिज्ञानपथे स्थितो विजयतामाकल्पमेषोऽच्युतः ॥

वर्ष ३ } वैशाख पूर्णिमा १९९३ { अङ्क ४

ॐ भद्रं कर्णेभिः श‍ृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

अच्युत

वार्षिक मूल्य—६)
एक प्रति का—॥)

[नोट—दूकानदारों तथा स्थायी ग्राहकोंके लिए २५% कमीशन काटकर ४॥) वार्षिक]

सम्पादक—

पं० चण्डीप्रसाद शुक्ल, प्रिंसिपल जो० म० गोयनका-संस्कृतमहाविद्यालय,

स० सम्पादक तथा प्रकाशक—

पं० श्रीकृष्ण पन्त साहित्याचार्य, अच्युत-ग्रन्थमाला-कार्यालय,
ललिताघाट काशी।

मुद्रक—माधव रामचन्द्र काले, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।
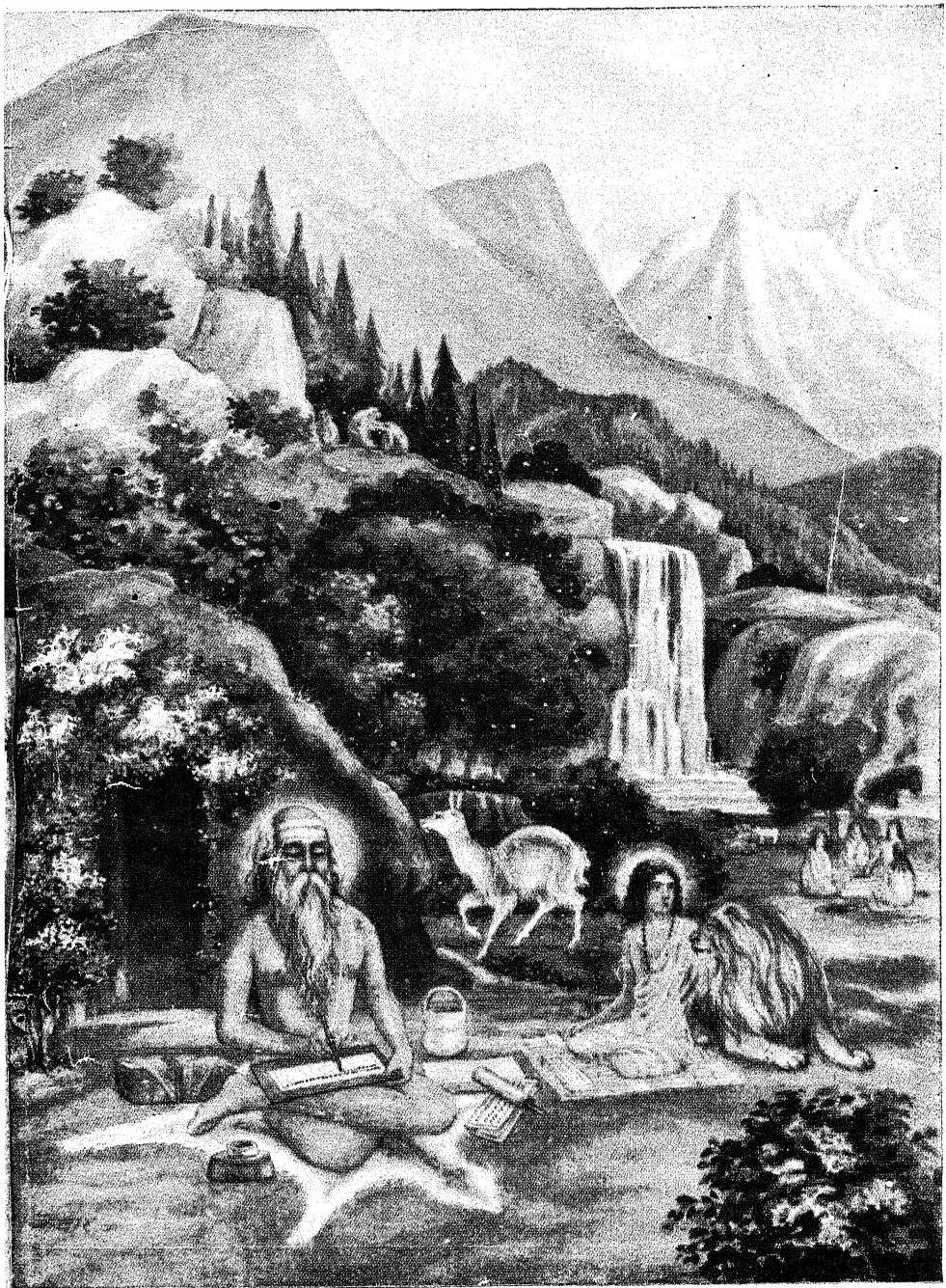
र्ष २ } संरक्षक—गौरीशङ्कर गोयनका-समर्पित निधि, काशी { अङ्क ४

वैशाख पूर्णिमा

षट्पदीस्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥१॥

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥२॥

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥३॥

उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥४॥

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवताऽवता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥५॥

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे ॥६॥

नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥७॥

श्रीशङ्कराचार्याः

श्रीः

भूमिका

उपोद्घात

काशीपुराधिष्ठाता श्रीविश्वनाथजीके असीम अनुग्रहसे हिन्दीभाषानुवाद तथा विषमटिप्पणीसहित ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यरत्नप्रभाका प्रकाश हुआ। हिन्दीभाषानुरागी पाठकोंमेंसे जो सज्जन वेदान्तके जिज्ञासु हैं, वे इस भाषानुवादसे विशेष लाभ उठावेंगे। इस भाषानुवादके रचयिता एक विरक्त संन्यासी हैं। वेदान्ततत्त्वके उपदेशमें उनका स्वाभाविक अधिकार है ही, सम्पादक तथा टिप्पणीकर्त्ता भी वेदान्ततत्त्वके मर्मज्ञ हैं। ऐसी अवस्थामें इसकी उपादेयता एवं सारवत्तरतामें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

'अच्युत' पत्रके प्रतिष्ठाता एवं सम्पादक महाशयोंने इस ग्रन्थकी भूमिका लिखनेका भार मुझपर छोड़ा है। विभिन्न प्रकारके कार्योंमें व्यापृत रहनेके कारण समय न मिलने एवं दैहिक अस्वस्थतासे यद्यपि मैं इसके लिए सहमत नहीं था, तो भी अवस्थानुसार स्वीकृति देनी ही पड़ी। अत एव प्रचलित नियमके अनुसार भूमिकाके बहाने अनुवादके विषयीभूत ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारके विषयमें एवं प्रासङ्गिक अन्यान्य विषयोंमें भी संक्षेपतः कुछ कहनेके लिए प्रवृत्त हुआ हूँ।

बादरायणका ब्रह्मसूत्र

यद्यपि ब्रह्मसूत्रकार बादरायणके विषयमें विशेष कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है, तथापि आलोचनाप्रसङ्गसे कुछ कहना पड़ता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि बादरायण व्यासका नामान्तर है। परन्तु आजकल पाश्चात्य तथा भारतीय अनेक अन्वेषणकर्ता विद्वान् यह माननेके लिए तैयार नहीं हैं। किसी-किसीका यह मत है कि बादरायणको व्यास मान लेनेपर भी वे कृष्णद्वैपायन व्यास हैं, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु इस विषयमें यह विचारणीय है कि पाणिनिजीके सूत्रमें जिन भिक्षुसूत्रकार पाराशर्यका उल्लेख है, वे कौन पाराशर्य हैं। भिक्षुशब्द संन्यासीका नामान्तर है। अत एव यह

अनुमान किया जा सकता है कि भिक्षुसूत्र संन्यासियोंके पठनयोग्य उपनिषदोंके आधारपर लिखा गया कोई ग्रन्थ होगा। यदि यह कल्पना सत्य हो, तो वह भिक्षुसूत्र वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्रसे भिन्न नहीं होगा। पाराशर्य पराशरपुत्रका नामान्तर है। अत एव पराशरपुत्र व्यास द्वारा निर्मित एक भिक्षुसूत्र अतिप्राचीन समयमें भी प्रसिद्ध था। भगवान् पाणिनिके सूत्रमें इस ग्रन्थका उल्लेख होनेसे प्रतीत होता है कि पाणिनिको उक्त ग्रन्थका परिचय था। वर्तमान समयमें जो ब्रह्मसूत्र प्रचलित है वह भी बादरायण व्यासके नामसे ही प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थसे अभिन्न है अथवा उस सम्प्रदायका कोई अर्वाचीन ग्रन्थ है, इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। इस विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि जब तक कोई प्रबल विरुद्ध प्रमाण आविष्कृत न हो, तब तक कल्पनागौरव करके एकसे अधिक वेदान्तसूत्रकार व्यासकी सत्ताका अंगीकार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अध्यापक जैकोबी तथा अन्यान्य पाश्चात्य विद्वानोंका विश्वास है कि प्रचलित वेदान्तसूत्र अन्यान्य दर्शनसूत्रोंके रचनाकालसे परवर्ती कालमें निर्मित हुआ था। इसका कारण यही है कि वेदान्तदर्शनमें खण्डन करनेके लिए जितने दार्शनिक पूर्वपक्ष उपस्थित हुए हैं वे सब अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। सांख्य, सांख्यानुगत योग, न्याय-वैशेषिक, बौद्ध, आर्हत, पाञ्चरात्र और पाशुपत—ये सब मत प्रवाहरूपसे प्राचीन होनेपर भी दार्शनिक साहित्यके इतिहासमें अत्यन्त प्राचीन नहीं हैं, क्योंकि अतिप्राचीन सांख्यमतका वेदान्तसूत्रमें निराकरण किया गया है, इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है। ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिकामें सांख्यदर्शनका जैसा स्वरूप दिखलाया गया है उसीका खण्डन वेदान्तसूत्रमें है। आसुरि, पञ्चशिख, जैगीषव्य, वार्षगण्य, जनक और पराशर, इन सब प्राचीन आचार्योंने सांख्यज्ञानमें निष्ठा प्राप्त करके जगत्में उसका प्रचार किया था। वोढु, सनन्दन आदि आचार्योंके विषयमें भी यही बात प्रचलित है। प्राचीन षष्टितन्त्रग्रन्थका प्रतिपाद्य ज्ञान ईश्वरकृष्णकृतकारिकोपदिष्ट ज्ञानसे सर्वथा अभिन्न नहीं है। महाभारतके शान्तिपर्वमें तथा चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंमें भी किसी-किसी अंशमें विभिन्न प्रकारसे सांख्यसिद्धान्तके विषयमें वर्णन मिलता है।

वर्तमान पण्डितोंकी यह कल्पना समीचीन प्रतीत नहीं होती, क्योंकि ब्रह्मसूत्रमें अति प्राचीन ऋषियोंको छोड़कर अर्वाचीन किसी सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता अथवा

किसी दार्शनिक सिद्धान्तके स्थापयिता किसी आचार्यके नामका निर्देश नहीं है। ब्रह्मसूत्रमें यदि सांख्यमतका निराकरण हुआ हो, तो उसे अति प्राचीन कालका ही सांख्यमत समझना चाहिए। न्याय-वैशेषिक सिद्धान्त भी, जिनका ब्रह्मसूत्रमें खण्डन किया गया है, प्रचलित गौतमसूत्र अथवा कणादसूत्रप्रतिपादित नहीं हैं। सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद तथा शून्यवादका खण्डन ब्रह्मसूत्रमें अवश्य दीखता है, किन्तु वह भी अत्यन्त अर्वाचीन ऐतिहासिक बौद्धमतविशेष है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। वैभाषिक तथा सौत्रान्तिकोंका सर्वास्तिवादसिद्धान्त बीज-रूपमें कथावत्थु प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होता है। योगाचार-सम्प्रदायके स्थापयिता बोधिसत्त्व मैत्रेयनाथ तथा योगाचार्य असंगसे पहले भी विज्ञानवाद विद्यमान था। लङ्कावतारसूत्र प्रभृति ग्रन्थोंमें तो स्पष्ट है ही, परन्तु पालीसाहित्यमें भी उसका स्पष्ट निर्देश मिलता है। माध्यमिकमत नागार्जुनके समयमें नागार्जुनके ग्रन्थोंमें तथा आर्यदेव, धर्मत्रात, भव्य प्रभृतिके ग्रन्थोंमें वर्णित है, यह बात सत्य है; परन्तु शून्यवाद नागार्जुनसे पहले अश्वघोषके ग्रन्थमें ही नहीं, अतिप्राचीन पालीग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होता है। प्राचीन उपनिषत् आदिमें भी सूक्ष्मरूपमें इन सब सिद्धान्तोंका परिचय मिलता है। अत एव यद्यपि यह निश्चितरूपसे कहना कठिन है कि वर्तमान ब्रह्मसूत्र ही पाणिनि-द्वारा कथित अतिप्राचीन भिक्षुसूत्रका अभिनव संस्करण है या नहीं, तथापि यह निश्चित है कि इस ग्रन्थको पाश्चात्य विद्वान् जितना नवीन समझते हैं उतना नवीन यह नहीं है। पाञ्चरात्र तथा पाशुपत ग्रन्थोंसे भी यही बात सिद्ध होती है, क्योंकि ये दो अवैदिक मत महाभारतके समयमें भी प्रचलित थे। महाभारतशान्तिपर्वके आलोचनसे यह विषय स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा। आर्हत मतको भी अत्यन्त नवीन कहना उचित नहीं है, क्योंकि प्राचीन वैदिक, बौद्ध तथा जैनशास्त्रोंके समालोचनसे माळूम होता है कि इस प्रकारके दार्शनिक विकल्प प्रवाहरूपमें प्राचीन समयसे ही प्रसिद्ध थे। परवर्ती समयमें ये सब मत संगृहीत करके दृष्टिभेदके अनुसार लिखे गये थे और प्रत्येक संग्रह एक एक दर्शनके नामसे विख्यात हुआ। जो लोग दर्शनशास्त्रके तत्त्वांशका विशेषरूपसे अध्ययन करते हैं वे यह बात समझ सकेंगे। केवल सादृश्यमात्रसे किसी मतको किसी सम्प्रदायका ख़ास मत समझ लेना ठीक नहीं है; क्योंकि तत् तत् सम्प्रदायके पहले भी वह

मत रहा, वस्तुतः उस प्राचीन मतका आशय लेकर ही तत्-तत् सम्प्रदायोंने अपने सिद्धान्तका प्रचार किया था। किसीका मतविशेष लौकिक उपायसे न जाननेपर भी वैयक्तिक साधनजन्यदृष्टिके प्रभावसे अनुभवगोचर किया जा सकता है, परन्तु इसमें भाषागतवैशिष्ट्य विशेषरूपसे विचारणीय है।

वेदान्त तथा प्राचीन आर्षसम्प्रदाय

बादरायणके ग्रन्थमें बहुतसे प्राचीन आचार्य्योंके नामोंका उल्लेख है। ये लोग प्राचीन आर्षवेदान्तके आचार्य थे। इन लोगोंके दार्शनिक मतमें सर्वथा एकता नहीं है। आचार्य बादरिका नाम ब्रह्मसूत्रमें चार स्थानोंमें आया है (ब्र० सू० १।२।३०, ३।१।११, ४।३।७, ४।४।१०)। जैमिनिके मीमांसासूत्रमें भी आचार्य बादरिका नाम (३।१।३; ६।१।२७; ८।३।६; ९।२।३०) मिलता है, अत एव यह अनुमान किया जा सकता है कि इन्होंने कर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसापर सूत्रग्रन्थ बनाये थे। इनके मतमें वैदिक कर्ममें सबका अधिकार है। जैमिनिने इस मतका खण्डन करते हुए शूद्रके अधिकारका खण्डन किया है। उपनिषदोंमें कहीं कहीं सर्वव्यापक ईश्वरका प्रादेशमात्ररूपसे वर्णन किया गया है। इसमें क्या उपपत्ति है? इस विषयमें आचार्य आश्मरथ्य तथा आचार्य जैमिनिके सदृश आचार्य बादरिके मतका भी ब्रह्मसूत्रमें उद्धार करके खण्डन किया गया है। बादरिका कथन यह है कि मन प्रादेशमात्र हृदयमें रहनेके कारण शास्त्रोंमें प्रादेशमात्र कहा जाता है। तादृश मनसे परमेश्वरका स्मरण होता है, इसलिए वह प्रादेशमात्ररूपसे वर्णित होता है। छान्दोग्य-उपनिषद्में (५।१०।७) 'तद्य इह रमणीयचरणाः' इत्यादि वाक्यमें चरणशब्दका प्रयोग है। इस प्रकरणमें चरणशब्दके क्या अर्थ हैं, इस विषयमें भी आचार्य्योंमें मतभेद है। बादरिके मतमें सुकृत और दुष्कृत ही चरणशब्दके वाच्य हैं। अनुष्ठानवाचक चरण-शब्दका प्रयोग उन्होंने कर्मार्थ में किया है। छान्दोग्य-उपनिषद्में (४।१५।५) 'स एनान् ब्रह्म गमयति' इस प्रकार वर्णन मिलता है। यहाँपर ब्रह्मशब्दसे परब्रह्मका ग्रहण करना चाहिए अथवा कार्यब्रह्मका इस प्रकारका संशय उठता है। जैमिनिके मतमें यह परब्रह्म है, परन्तु बादरि कहते हैं कि यह परब्रह्म नहीं हो सकता,—परब्रह्म सर्वगत है और गन्ताका प्रत्यगात्मस्वरूप है, इसलिए उसमें गन्ता, गन्तव्य और गति इस तरह भेद

नहीं हो सकता; परन्तु कार्य-ब्रह्म प्रदेशवान् है, इसीलिए उसका गन्तव्यरूपसे वर्णन किया जाता है। अत एव छान्दोग्यके वचनमें जो ब्रह्मशब्द है वह कार्यब्रह्मका वाचक है। छान्दोग्यके अष्टम प्रपाठकमें (८।२।१) मुक्त पुरुषके वर्णनके प्रसंगमें कहा गया है—'सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति'। यहाँपर प्रश्न होता है कि ईश्वरभावापन्न विद्वान्के शरीर तथा इन्द्रियोंकी सत्ता रहती है या नहीं? बादरि कहते हैं,—नहीं रहती। इसीलिए छान्दोग्यमें (८।१२।१५) कहा गया है कि 'मनसा एतान् कामान् पश्यन्'।

बादरायणने आश्मरथ्यका उल्लेख दो सूत्रोंमें (ब्र० सू० १।२।२९, १।४।२०) किया है। पूर्वोक्त प्रकरणमें प्रादेशमात्रशब्दका व्याख्यान विलक्षण-सा है। वे कहते हैं—परमेश्वर वस्तुतः अनन्त होनेपर भी उपासकके ऊपर अनुग्रह करनेके लिए प्रादेशमात्रमें आविर्भूत होता है, क्योंकि सम्पूर्णतः उसकी उपलब्धि कोई नहीं कर सकता। हृदयादि उपलब्धि-स्थानोंमें अर्थात् प्रदेशोंमें परमेश्वरकी उपलब्धि विशेषरूपसे होती है। इसलिए भी परमेश्वर प्रादेशमात्र कहा जा सकता है, यह आश्मरथ्यका वैकल्पिक व्याख्यान है। उनके मतमें विज्ञानात्मा तथा परमात्मामें परस्पर भेदाभेद-सम्बन्ध है। 'आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' इत्यादि वाक्योंमें जो एकविज्ञानसे सर्वविज्ञान-वादकी प्रतिज्ञा की गई है, उससे भी भेदाभेदवाद सिद्ध होता है। आश्मरथ्यका भेदाभेदवाद परवर्ती कालमें यादवप्रकाश द्वारा परिपुष्ट हुआ था, यह श्रुतिप्रकाशिकाकार सुदर्शनाचार्यने स्पष्टरूपसे कहा है।* मीमांसादर्शनमें (६।५।१६) भी आश्मरथ्यका नाम आया है।

आत्रेयके नामका केवल एक ही स्थानमें उल्लेख किया गया है (ब्र० सू० ३।४।४४)। अङ्गाश्रित उपासना यजमानकर्तृक तथा ऋत्विक्कर्तृक दोनों प्रकारसे कही जा सकती है। इसीसे संशय होता है कि उनका फल किसको प्राप्त होगा। इस विषयमें आत्रेयका सिद्धान्त यह है कि कर्मका फल स्वामी अथवा यजमानको ही प्राप्त होगा, ऋत्विक्को नहीं हो सकता। महाभारतमें (१३।१३७।३) निर्गुण ब्रह्मविद्याके उपदेष्टृरूपमें एक आत्रेय ऋषिका नाम

---

* शङ्करने (ब्र० सू० १।४।२२) आचार्य आश्मरथ्यके मतका इस प्रकार उपन्यास किया है—'आश्मरथ्यस्य तु यद्यपि जीवस्य परस्मादनन्यत्वमभिप्रेतं तथापि प्रतिज्ञासिद्धेरिति सापेक्षत्वाविद्योतनात् कार्यकारणभावः कियानपि अभिप्रेत इति गम्यते।'

मिलता है, किन्तु यह निश्चितरूपसे कहना कठिन है कि ब्रह्मसूत्रोक्त आत्रेय उनसे भिन्न हैं या अभिन्न। मीमांसादर्शनमें भी (४।३।१८; ६।१।२६) आत्रेयका उल्लेख मिलता है।

आचार्य काशकृत्स्न (ब्र० सू० १ । ४ । २२) कहते हैं कि छान्दोग्य-उपनिषत्‌के षष्ठ प्रपाठकसे प्रतीत होता है कि परमात्मा ही जीवलोकमें अवस्थित है। जीव परमात्माका विकार नहीं है। आचार्य शङ्कर कहते हैं—'काशकृत्स्नस्य आचार्यस्य अविकृतः परमेश्वरो जीवः नान्य इति मतम्'। उन्होंने श्रुत्यनुसारी कह कर स्वयं इस मतको मान लिया है।

औडुलोमिका नाम ब्रह्मसूत्रमें तीन जगह आया है (१ । ४ । २१, ३ । ४ । ४५, ४ । ४ । ६)। उनके मतमें भेदाभेद अवस्थान्तरके अनुसार है अर्थात् सत्य संसारदशामें जीव और ब्रह्ममें भेद है मुक्ति होनेपर अभेद है। वाचस्पतिमिश्रने भामतीमें इनके मतका इस प्रकार प्रदर्शन किया है—'जीवो हि परमात्मनोऽत्यन्तं भिन्न एव सन् देहेन्द्रियमनोबुद्ध्युपधान-सम्पर्कात् सर्वदा कलुषः, तस्य च ज्ञानध्यानादिसाधनानुष्ठानात् सम्प्रसन्नस्य देहेन्द्रियादिसंघातात् उत्क्रमिष्यतः परमात्मना ऐक्योपपत्तेः इदमभेदेनोपक्रमणम्। एतदुक्तं भवति—भविष्यन्तमभेदमुपादाय भेदकालेऽपि अभेद उक्तः। यथाऽऽहुः पाञ्चरात्रिकाः—

"आमुक्तेर्भेद एव स्यात् जीवस्य च परस्य च।
मुक्तस्य तु न भेदोऽस्ति भेदहेतोरभावतः॥"

आचार्य काष्णार्जिनिका नाम केवल एक सूत्रमें उल्लिखित है (ब्र० सू० ३।१।९)। मीमांसासूत्रमें भी (४।३।१७; ६।७।३५) काष्णार्जिनिका नामोल्लेख है।

बादरायणके ब्रह्मसूत्रमें जैमिनिका नाम सबसे अधिक लिया गया है (१।२।२८, १।२।३१, १।३।३१, १।४।१८, ३।२।४०, ३।४।२-७, ३।४।१८, ३।४।४०, ४।३।१२, ४।४।५, ४।४।११)।

प्राचीन कालमें काश्यप* का भी सूत्रग्रन्थ था, ऐसा प्रतीत होता है। भक्ति-

---

* महाभारतमें (१२।३१९।५९) जिन आचार्योंने गन्धर्व विभावसुको पञ्चविंशतितत्त्वोंके अथवा पुरुषके रूपके विषयमें उपदेश दिया था, उनमें काश्यपका नाम भी आता है। प्राचीन साहित्यका अनुसन्धान करनेसे ग्रन्थकाररूपमें और भी २।३ काश्यपोंका पता चलता है। इनमें एक आचार्य, संगीत तथा अलङ्कारशास्त्रके प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे। अभिनव गुप्ताचार्यने नाट्य-

सूत्रकार शाण्डिल्यने अपने सूत्रग्रन्थमें काश्यप तथा बादरायणके मतका उल्लेख-पूर्वक अपने सिद्धान्तका स्थापन किया है। उनके मतमें* काश्यप भेदवादी

शास्त्रकी टीकामें इनके मतका प्रसङ्गतः उल्लेख किया है। हृदयङ्गमा नामक ग्रन्थमें काश्यप, वर चि प्रभृतिके लक्षणशास्त्रका उल्लेख मिलता है। किसी-किसीके मतमें काश्यपने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्रका अवलम्बन करके ही ये ग्रन्थ बनाये थे जिनमें संगीत और अलङ्कार दोनों विषयोंका वर्णन है। राजा नान्यदेवने स्वनिर्मित सरस्वतीहृदयालङ्कार नामक नाट्यशास्त्र-टीकामें स्थल-स्थल पर काश्यपका उल्लेख किया है। और भी एक काश्यपका उल्लेख नान्यदेवके उक्त ग्रन्थमें ही मिलता है, प्रथम काश्यपसे इनमें पार्थक्य या भेद ज्ञापनके लिए बृहत्काश्यप नामसे इनका उल्लेख किया गया है। एक और तीसरे काश्यपका पता चलता है जिन्होंने चित्रविद्याके ऊपर एक ग्रन्थ बनाया था। शाण्डिल्यसूत्रमें जिस काश्यपका नाम आता है, वह महाभारतोक्त काश्यप तथा इन तीन काश्यपोंमेंसे किसीसे अभिन्न है या नहीं इसका निश्चय करना कठिन है।

* बादरायणके विषयमें शाण्डिल्यका यह मत भी विचारणीय है। शाण्डिल्यके वचनसे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि उनकी दृष्टिमें बादरायण अद्वैतवादी थे। शङ्करसम्प्रदायने भी इसी विश्वासके ऊपर अद्वैतपक्षमें उनके सूत्रोंका व्याख्यान किया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य पण्डित थीबोने शङ्कराचार्यकृत भाष्यके स्वरचित अनुवादकी भूमिकामें शङ्कराचार्यकी व्याख्याके ऊपर कटाक्ष किया है। उनका कहना यह है कि 'बादरायणका दार्शनिक सिद्धान्त शङ्कराचार्यके सिद्धान्तसे सर्वथा भिन्न था, किन्तु शङ्कराचार्यने अपने शुष्क निर्विशेष अद्वैत सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए बादरायणके ऊपर अपने मतका आरोप किया है। इसीलिए ब्रह्मसूत्रके शाङ्करभाष्यको पढ़नेसे सूत्रकारका वास्तविक सिद्धान्त मालूम नहीं हो सकता है।' इनकी समालोचनाके भावको ग्रहण करते हुए परवर्ती बहुतसे समालोचकोंने शङ्कराचार्यकी व्याख्याके विषयमें ऐसा ही मत प्रकट किया है। प्राचीनकालमें रामानुज आदि आचार्योंने भी ब्रह्मसूत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें शङ्कराचार्यके व्याख्यानके ऊपर विभिन्न स्थलोंपर दोष दिखलाये हैं। रामानुजाचार्यके पूर्ववर्ती आचार्य भास्करन अपने भाष्यके आरम्भमें स्पष्ट वाक्योंमें कहा है कि शङ्कराचार्यने सूत्रकारके अभिप्रायको गुप्त करके अपना सिद्धान्त ब्रह्मसूत्रके भाष्यके बहाने प्रकट किया है। उनका कहना है कि इस अपव्याख्यानका प्रदर्शन करके यथातथरूपमें भाष्यका आशय प्रकट करना ही उनके भाष्यका उद्देश्य है—

"सूत्राभिप्रायसंवृत्या स्वाभिप्रायप्रकाशनात्।
व्याख्यातं यैरिदं शास्त्रं व्याख्येयं तन्निवृत्तये॥"

पूर्वोक्त आलोचनासे इतना सिद्ध होता है कि डा० थीबो तथा उनके अनुयायियोंकी प्रतिकूल आलोचनाएँ सर्वथा अभिनव नहीं हैं; क्योंकि पूर्वकालमें भी ऐसी समालोचनाएँ होती थीं। परन्तु शाण्डिल्यके वचनसे यह भी स्पष्टतः प्रतीत होता है कि प्राचीनकालमें बादरायणके सूत्रोंका अभिप्राय अद्वैतपरक भी माना जाता था। इस प्रकारका मत केवल भाष्यकारोंका ही नहीं था, किन्तु सूत्रकारोंका भी था।

तथा बादरायण अभेदवादी थे । उनके जिन सूत्रोंमें काश्यपसिद्धान्त, बादरायण-सिद्धान्त तथा अपने सिद्धान्तका उल्लेख किया गया है, वे ये हैं—

१—तामैश्वर्यपरां काश्यपः परत्वात् (२९)

२—आत्मैकपरां बादरायणः (३०)

३—उभयपरां शाण्डिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम् (३१)

इनके सिवा और भी अनेक ऋषियोंका वर्णन मिलता है, जिन्होंने विभिन्न दार्शनिक ज्ञानका प्रचार किया था । असित, देवल, गर्ग, जैगीषव्य, पराशर, भृगु इत्यादि ऋषियोंका नाम इस प्रसङ्गमें विशेष उल्लेखनीय है ।

प्राचीन वेदान्तमत

प्राचीन दर्शनशास्त्रके अध्ययनसे भर्तृप्रपञ्च, ब्रह्मनन्दी, टङ्क, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी, उपवर्ष, बोधायन, भर्तृहरि, सुन्दरपाण्ड्य, द्रमिडाचार्य, ब्रह्मदत्त आदि वेदान्ताचार्य्योंके नाम ज्ञात होते हैं । यह कहना कठिन है कि इन सभीने ब्रह्मसूत्रके ऊपर भाष्यरचना की थी या नहीं । इनमेंसे किसीने गीताके ऊपर भाष्यरचना की थी और किसीने ब्रह्मसूत्र और गीता दोनोंपर ही । उपनिषदोंपर भी किसी किसीका व्याख्यान प्रचलित था । परन्तु इन सबका ठीक ठीक निर्देश करनेके लिए इस समय कोई उपाय नहीं है । हाँ, इतना अवश्य प्रतीत होता है कि भर्तृप्रपञ्चने कठोपनिषत् और बृहदारण्यक-पर भाष्यरचना की थी । सुरेश्वराचार्य और आनन्दगिरिके समयमें भी भर्तृप्रपञ्चका ग्रन्थ उपलब्ध होता था, क्योंकि इन लोगोंने जिस प्रकार उनके मतका उपन्यास तथा प्रपञ्चन किया है, वैसा ग्रन्थके साक्षात् समालोचनके बिना हो नहीं सकता । भर्तृप्रपञ्चका सिद्धान्त ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद रहा । यद्यपि शङ्कराचार्यने बृहदारण्यकभाष्यमें कहीं-कहींपर 'औपनिषदम्मन्य' कह कर उनका परिहास किया है, तथापि यह बात अवश्य ही माननी होगी कि उस समय दार्शनिक क्षेत्रमें उनका पाण्डित्य तथा प्रभाव कुछ कम नहीं था । इसी कारण शङ्करके साक्षात् शिष्य अपने वार्तिकमें 'सम्प्रदायवित्' तथा 'ब्रह्मवादी' कह कर उनकी प्रशंसा करनेके लिए बाध्य हुए थे । दार्शनिक दृष्टिसे इनका मत द्वैताद्वैत, भेदाभेद, अनेकान्त आदि अनेक नामसे प्रसिद्ध था * । उनका मत है कि

---

* शङ्कराचार्यने शारीरक भाष्यमें (ब्र० सू० २।१।१४) भर्तृप्रपञ्चके भेदाभेदमतका उपन्यास इस प्रकार किया है—'(ननु) अनेकात्मकं ब्रह्म, यथाऽनेकशाखः वृक्षः, एवमनेकशक्तिप्रवृत्ति-

परमार्थ एक भी है और नाना भी है—ब्रह्मरूपमें एक है और जगद्रूपमें नाना है। इसीलिए एकान्ततः कर्म अथवा ज्ञानका स्वीकार न कर दोनोंकी ही सार्थकता मान ली गई है। ज्ञान और कर्मका समुच्चय माननेका यही मुख्य उद्देश्य है। भर्तृप्रपञ्चकी दृष्टिसे जीव नाना और परमात्माका एकदेशमात्र है,—जैसे ऊषर देश पृथिवीके एक देशमें आश्रित है, वैसे ही यह भी है। विद्या, कर्म तथा पूर्वकर्म-संस्कार जीवमें विद्यमान रहते हैं, अविद्या परमात्मासे अभिव्यक्त होकर जीवमें विकार उत्पन्न करती हुई अनात्मस्वरूप अन्तःकरणमें धर्मभावसे वर्तमान रहती है। वे कहते हैं कि जीव परममोक्षलाभ करनेके पहले हिरण्यगर्भभावको प्राप्त होते हैं। हिरण्यगर्भत्व मुक्तावस्था नहीं है; किन्तु मोक्षकी पूर्वकालीन अन्तराल अवस्थामात्र है। इस अवस्थामें परमात्माका आभिमुख्य सर्वदाके लिए वर्तमान रहता है। काम, वासना आदि जीवके धर्म हैं। जीवका नानात्व औपाधिक नहीं है, परन्तु धर्म तथा दृष्टिके भेदसे है। ब्रह्म एक होनेपर भी समुद्रतरङ्गके समान द्वैताद्वैत है। जैसे अद्वैतभाव सत्य है, वैसे ही द्वैतभाव भी सत्य है। द्वैतभावकी सत्तासे कर्मकाण्डका प्रामाण्य स्वीकार करना आवश्यक होता है। कार्य-कारणभाव कल्पित नहीं है, किन्तु सत्य है। मुमुक्षु तथा मुक्त पुरुषका आत्मदर्शन ठीक एक प्रकारका नहीं है। भर्तृप्रपञ्चने प्रथम दर्शनको परिच्छिन्नकर्मात्मदर्शन तथा द्वितीय प्रकारके दर्शनको अपरिच्छिन्न परमात्मदर्शन कहा है। परिच्छेदक विज्ञान ही अविद्या है। 'अहमेव इदं सर्वम्' इत्याकारक अर्थबोध परमात्मामें नित्य ही है, परन्तु तिरस्कृतविज्ञान सांसारिक आत्मामें इस प्रकारके बोधका अस्तित्व अनित्य है। अविद्याके सम्बन्धसे परब्रह्म ही हिरण्यगर्भपदवाच्य होता है। हिरण्यगर्भ सर्वत्र व्यापक है, यह निखिल सत्त्वोंका आत्मा अथवा जगदात्मा है। हिरण्यगर्भके साथ आसक्तिके सम्बन्धसे जीवभावका विकास होता है। आसङ्ग या वासना अन्तःकरणका धर्म है, यह जीवमें सङ्क्रान्त होकर जीव-धर्म बन जाता है। जीव ही कर्ता, भोक्ता तथा ज्ञाता है। भर्तृप्रपञ्चकी दृष्टिसे जीव ब्रह्मका

युक्तं ब्रह्म। अत एकत्वं नानात्वञ्चोभयमपि सत्यमेव। यथा वृक्ष इत्येकत्वम्, शाखा इति नानात्वम्। यथा च समुद्रात्मनैकत्वम्, फेनतरङ्गाद्यात्मना नानात्वम्। यथा च मृदात्मनैकत्वम्, घटशरावाद्यात्मना नानात्वम्। तत्रैकत्वेनांऽशेन ज्ञानान्मोक्षव्यवहारः सेत्स्यति, नानात्वांशेन तु कर्मकाण्डाश्रयौ लौकिकवैदिकव्यवहारौ सेत्स्यत इति। एवं च मृदादिदृष्टान्ता अनुरूपा भविष्यन्तीति।'

परिणामस्वरूप है। इनके मतमें इन्द्रिय भौतिक है, आहङ्कारिक नहीं है। मोक्ष दो प्रकारका है—(१) अपरमोक्ष अथवा अपवर्ग, (२) परामुक्ति अथवा ब्रह्मभावापत्ति। इसी देहमें ब्रह्म-साक्षात्कार होनेपर प्रथम प्रकारका मोक्ष आविर्भूत होता है, यह जीवन्मुक्तिके अनुरूप है, इसका नाम अपवर्ग है। वस्तुतः यह आसङ्ग-त्यागनिमित्तक संसारनिवृत्तिमात्र है। देहपात न होनेसे ब्रह्ममें लय नहीं हो सकता, परन्तु देहपातके अनन्तर दूसरे प्रकारके मोक्षका—परममोक्षका—उदय होता है। यह ब्रह्ममें जीवका लय अथवा जीवकी ब्रह्मभावापत्ति है। इस अवस्थाका आविर्भाव अविद्यानिवृत्तिका फलस्वरूप है। इससे सिद्ध होता है कि भर्तृ-प्रपञ्चके मतसे ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर भी अर्थात् अपरामुक्ति या अपवर्गदशामें भी अविद्या पूर्णतया निवृत्त नहीं होती। अविद्यानिवृत्तिके साथ-साथ जीवके ब्रह्मभावकी उपलब्धिका प्रतिबन्धक शरीर छूट जाता है और परामुक्तिका अधिगम होता है। परमात्मा अथवा परब्रह्म नित्य पदार्थ है। इस अवस्थामें सम्पूर्ण विशेष अव्यक्त रहते हैं,—जैसे समुद्रमें ऊर्मियोंका एकत्व है, वैसे ही अविशेष अव्यक्त परमात्मावस्थामें निखिल विशेषोंका एकत्व है। ब्रह्मका परिणाम तीन प्रकारका है—(१) अन्तर्यामी तथा जीवरूपमें; (२) अव्याकृत, सूत्र, विराट् तथा देवतारूपमें; (३) जाति तथा पिण्डरूपमें। ये आठ अवस्थाएँ ब्रह्मकी ही हैं। इसी प्रकार जगत् आठ प्रकारसे विभक्त है। प्रकारान्तरसे ये तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं—(१) परमात्मराशि, (२) जीवराशि और (३) मूर्तामूर्तराशि। भर्तृप्रपञ्च प्रमाणसमुच्चयवादी थे। लौकिक प्रमाण और वेद दोनों ही सत्य हैं। इसीलिए उन्होंने लौकिक-प्रमाणगम्य भेदको और वेदगम्य अभेदको सत्यरूपमें माना है। इसी कारण इनके मतमें जैसे केवल कर्म मोक्षका साधन नहीं हो सकता है, वैसे ही केवल ज्ञान भी मोक्षका साधन नहीं हो सकता। मोक्षप्राप्तिके लिए ज्ञान-कर्मसमुच्चय ही प्रकृष्ट साधन है।

भर्तृमित्रका प्रसङ्ग जयन्तकृत न्यायमञ्जरीमें (पृ० २१३,२२६) तथा यामुनाचार्यके सिद्धित्रयमें (पृ० ४-५) आया है। इससे प्रतीत होता है कि ये भी वैदान्तिक आचार्य ही रहे होंगे। भर्तृमित्रने मीमांसाके विषयमें भी रचना की थी। भट्टपाद कुमारिलने अपने श्लोकवार्तिकमें (१।१।१।१०; १।१।६।१३०–१३१) इनका उल्लेख किया है;—टीकाकार पार्थसारथिमिश्रने न्यायरत्नाकरनामक टीकामें ऐसा ही आशय प्रकट किया है। कुमारिल कहते हैं कि भर्तृमित्र प्रभृति

आचार्योंके अपसिद्धान्तोंके प्रभावसे मीमांसाशास्त्र लोकायतीकृत हुआ था। विशिष्टाद्वैतग्रन्थोंमें उल्लिखित भर्तृमित्र और श्लोकवार्तिकोक्त मीमांसक भर्तृमित्र एक व्यक्ति थे या भिन्न थे, इसका निश्चय करना कठिन है। परन्तु कुमारिलके समालोचनसे मालूम होता है कि ये दो पृथक् व्यक्ति थे। मुकुल भट्टने अपने अभिधावृत्तिमातृका ग्रन्थमें पृथक् भी भर्तृमित्रका नामनिर्देश किया है (पृ० १७ निर्णयसागर)।

भर्तृहरि—

भर्तृहरिका नाम भी यामुनाचार्यके ग्रन्थमें उल्लिखित हुआ है। इनको वाक्यपदीयकारसे अभिन्न माननेमें कोई अनुपपत्ति नहीं प्रतीत होती। परन्तु इनका कोई वेदान्त ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। वाक्यपदीय व्याकरणविषयक ग्रन्थ होनेपर भी प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है। अद्वैतसिद्धान्त ही इसका उपजीव्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किसी-किसी आचार्यका मत है कि भर्तृहरिके शब्दब्रह्मवादका प्रधानतया अवलम्बन करके आचार्य मण्डनमिश्रने ब्रह्मसिद्धि नामक ग्रन्थका निर्माण किया था। इसके ऊपर वाचस्पतिमिश्रकी ब्रह्मतत्त्व-समीक्षा नामक एक टीका थी। उत्पलाचार्यके गुरु काश्मीरीय शिवाद्वैतके प्रधानतम आचार्य सोमानन्दपादने स्वरचित शिवदृष्टिनामक ग्रन्थमें भर्तृहरिके शब्दाद्वयवादकी विशेषरूपसे समालोचना की है। शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह, अविमुक्तात्मकृत इष्टसिद्धि तथा जयन्तकृत न्यायमञ्जरीमें भी शब्दाद्वैतवादका उल्लेख मिलता है। उत्पल तथा सोमानन्दके वचनोंसे ज्ञात होता है कि भर्तृहरि तथा तदनुसारी शब्दब्रह्मवादी दार्शनिकगण 'पश्यन्ती' वाक्को ही शब्दब्रह्मरूप मानते थे। यह भी प्रतीत होता है कि इस मतमें पश्यन्ती ही परावाक् रूपमें व्यवहृत होती थी। यह वाक् विश्व जगत्का नियामक तथा अन्तर्यामी चित्-तत्त्वसे अभिन्न है।

उपवर्ष—

आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कहीं-कहीं उपवर्षनामक एक प्राचीन वृत्तिकारके मतका उल्लेख किया है। इस वृत्तिकारने दोनों ही मीमांसाशास्त्रोंपर वृत्तिग्रन्थ बनाये थे, ऐसा प्रतीत होता है। पण्डित लोग अनुमान करते हैं कि ये 'भगवान् उपवर्ष' वे ही हैं, जिनका उल्लेख शाबरभाष्यमें (मी० सू०

१।१।५) स्पष्टतः किया गया है। शङ्कर कहते हैं (ब्र० सू० ३।३।५३) कि उपवर्षने अपनी मीमांसावृत्तिमें कहीं-कहींपर शारीरकसूत्रपर लिखी गई वृत्तिकी बातोंका उल्लेख किया है। ये उपवर्षाचार्य शबरस्वामीसे पहले थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु कृष्णदेवनिर्मित तन्त्रचूड़ामणिनामक ग्रन्थमें लिखा है कि शाबरभाष्यके ऊपर उपवर्षकी एक वृत्ति थी (द्रष्टव्य—Fitz Edward Hall का बनाया हुआ 'Index to Sanskrit Philosophy,' p. 167) । कृष्णदेवके वचनका कोई मूल है या नहीं, यह कहना कठिन है। यदि उनका वचन प्रामाणिक माना जाय, तो इस उपवर्ष को प्राचीन उपवर्षसे भिन्न मानना पड़ेगा।

बोधायन—

प्रसिद्ध है कि ब्रह्मसूत्रपर बोधायनकी एक वृत्ति थी, जिससे आचार्य रामानुजने अपने भाष्यमें वचनोंका उद्धार किया है (द्रष्टव्य—Sacred Books of the East ग्रन्थमालामें श्रीबोलिखित वेदान्तशाङ्करभाष्यानुवादभूमिका, पृ० २१) ।

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित Hermann Jacobi का मत है कि बोधायनने मीमांसा-सूत्रपर भी वृत्ति लिखी थी (द्रष्टव्य—Journal of the American Oriental Society, 1911, p. 17) । प्रपञ्चहृदयनामक ग्रन्थसे भी यह बात सिद्ध होती है और प्रतीत होता है कि बोधायननिर्मित वेदान्तवृत्तिका नाम 'कृतकोटि' था (द्रष्टव्य—Trivandram से प्रकाशित 'प्रपञ्चहृदय', पृ० ३९) ।

ब्रह्मनन्दी—

प्राचीनकालमें एक वेदान्ताचार्य 'ब्रह्मनन्दी' नामसे भी आविर्भूत हुए थे। इनका मत मधुसूदनसरस्वतीने संक्षेपशारीरककी टीकामें (३–२१७) उद्धृत किया है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि शायद ये भी अद्वैतवेदान्तके आचार्य रहे होंगे। प्राचीन वेदान्तसाहित्यमें 'ब्रह्मनन्दी' छान्दोग्यवाक्यकारके अथवा केवल वाक्यकारके नामसे प्रसिद्ध थे।

टङ्क—

श्रीवैष्णवसम्प्रदायके साहित्यमें भी एक वाक्यकारका पता लगता है। उनका नाम 'टङ्क' है। विशिष्टाद्वैती लोग ब्रह्मनन्दी और टङ्कको अभिन्न समझते हैं, परन्तु यह कहाँ तक सत्य है, यह कहना कठिन है।

ब्रह्मदत्त—

शङ्कराचार्यजीके पूर्व समयमें एक और अति प्रसिद्ध वेदान्ती थे, उनका नाम ब्रह्मदत्त था। * सम्भव है, वे भी वेदान्तसूत्रके भाष्यकार रहे हों†। परन्तु यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मदत्तके मतसे जीव अनित्य है, एकमात्र ब्रह्म ही नित्य पदार्थ है। 'एकं ब्रह्मैव नित्यं तदितरदखिलं तत्र जन्मादिभाग् इत्यायातम्, तेन जीवोऽपि अचिदिव जन्मिमान्'—यह मत ब्रह्मदत्तका है। इसे वेदान्तदेशिकाचार्यने अपने तत्त्वमुक्ताकलापकी टीका सर्वार्थसिद्धिमें (२—१६) उद्धृत किया है। ब्रह्मदत्त कहते हैं—जीव तथा जगत् दोनों ही ब्रह्मसे उत्पन्न होकर ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं। इनकी दृष्टिसे उपनिषदोंका यथार्थतात्पर्य 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्योंमें नहीं है, किन्तु 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि नियोगवाक्योंमें है। इनका कहना है कि भिन्नवत् प्रतीत होनेपर भी जीव वस्तुतः ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। ब्रह्मदत्तके मतसे, साधककी किसी अवस्थामें भी, कर्मोंका त्याग नहीं हो सकता। प्राचीन आचार्योंमें आश्मरथ्यका सिद्धान्त था कि ब्रह्मसे जीव उत्पन्न होते हैं और मुक्तिमें ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। उसी प्रकार ब्रह्मदत्त भी जीवकी उत्पत्ति और विनाश मानते थे। परन्तु आश्मरथ्य भेदाभेद पक्षके अनुकूल थे। ब्रह्मदत्त अद्वैतवादी थे (नैष्कर्म्यसिद्धि १—६८)। शङ्कराचार्यके मतमें महावाक्यजन्य ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति होती है। उनके मतमें ज्ञानसे उपासना भिन्न है। शङ्कर उपासनाके विषयमें विधि माननेपर भी (ब्र० सू० १।१।४) ज्ञानके विषयमें विधि नहीं मानते हैं। अविद्याकी निवृत्ति करनेवाला यथार्थज्ञान वस्तुतन्त्र या पुरुषतन्त्र है। इसलिए आत्मज्ञानके लिए विधिकी कोई आवश्यकता नहीं है। और वेदान्ती ज्ञान और उपासनामें इस प्रकारका भेद नहीं मानते हैं। वे लोग किसी-न-किसी प्रकारसे आत्मज्ञानमें भी विधि मानते ही हैं। मीमांसक लोग कहते हैं कि वेदका मुख्य तात्पर्य सिद्धवस्तुके निर्देशमात्रमें नहीं है, परन्तु शङ्करेतर वेदान्ती भी कर्मका उपदेश प्रायः ऐसा ही मानते हैं। इन

---

* माध्वसम्प्रदायके मणिमञ्जरीनामक ग्रन्थमें (.६।२-३) लिखा है—शङ्कराचार्य ब्रह्मदत्तसे मिलने गये थे, परन्तु यह बात प्रामाणिक मालूम नहीं होती।

† सिद्धित्रय (प्रारम्भ)।

वेदान्तियोंकी दृष्टिसे पूर्व और उत्तरमीमांसामें यही भेद है कि पूर्वकाण्डमें कर्मविधि है और उत्तरकाण्डमें भावनाविधि है। इसीलिए उपनिषद्‌में 'आत्मा वा अरे' इत्यादि विधिवाक्योंकी ही प्रधानता माननी चाहिए; 'तत्त्वमसि' इत्यादिवाक्योंका प्राधान्य नहीं है। वस्तुके स्वरूपज्ञानके बिना भावना नहीं हो सकती। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य वस्तुके स्वरूपमात्रके बोधक हैं, अत एव आत्मा उपासनाविधिका शेष है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों ही साध्यविषयक हैं, सिद्धविषयक नहीं हैं। सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कहा है—(१—६७) "केचित् स्वसम्प्रदायबलावष्टम्भात् आहुः—यदेतत् वेदान्तवाक्यादहं ब्रह्मेति विज्ञानं समुत्पद्यते, तन्नैव स्वोत्पत्तिमात्रेण अज्ञानं निरस्यति किं तर्हि अहन्यहनि द्राघीयसा कालेन उपासीनस्य सतः भावनोपचयात् निःशेषमज्ञानमपगच्छति, 'देवोभूत्वा देवानप्येति' इति श्रुतेः।" ज्ञानामृतविद्या-सुरभिनामकी नैष्कर्म्यसिद्धिटीकामें यह मत ब्रह्मदत्तका है, ऐसा निर्णय किया गया है। शङ्कराचार्यने बृहदारण्यकके भाष्यमें (१।४।७) ब्रह्मदत्तके मतका उल्लेख किया है। इस मतमें अज्ञानकी निवृत्ति भावनाजन्य ज्ञानसे ही होती है,—औपनिषदज्ञान मुक्तिके लिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रकारके ज्ञानका लाभ करनेपर भी जीवनपर्यन्त भावना आवश्यक है। ब्रह्मदत्त कहते हैं—यद्यपि देहके अवस्थिति-कालमें भी उपायसे देवताका साक्षात्कार हो सकता है, तथापि उनके साथ मिलन तभी हो सकता है जब देह न रहे। प्रारब्धकर्मलब्ध देह उपास्यके साथ उपासकके मिलनमें प्रतिबन्धक है (द्रष्टव्य—बृ० उ० वार्तिक, पृ० १३५७; नैष्कर्म्यसिद्धिटीका चन्द्रिका १-६७)। जिस प्रकार मृत्युके अनन्तर ही स्वर्गलाभ हो सकता है, उसी प्रकार मोक्ष भी देह छूट जानेके पश्चात् ही होता है। दोनों ही वैदिकविधिके पालनके फल हैं। ब्रह्मदत्त ध्याननियोगवादी थे। वे जीवन्मुक्ति नहीं मानते थे। शङ्कराचार्यके मतसे मोक्ष दृष्ट फल है, परन्तु ब्रह्मदत्तके मतसे यह अदृष्ट फल है। शङ्करमतमें कर्मसे जिज्ञासा उत्पन्न होती है, मोक्ष नहीं होता। जीवन्मुक्तको कर्मोंकी आवश्यकता नहीं है। इस अवस्थामें कर्मसंन्यास स्वतः प्राप्त है। सत्त्वशुद्धि अथवा वैराग्य होनेपर शङ्करमतमें कर्मकी आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्थामें कर्मसंन्यास विधिप्राप्त है (द्र०—ऐतरेय भाष्य, उपोद्घात)। इस प्रकारकी द्वितीयावस्थामें साधकको केवल ज्ञानके अर्जनमें

प्रयत्नशील होना चाहिए। ब्रह्मदत्तकी दृष्टिसे साधनक्रम इस प्रकार है—पहले उपनिषत्से ब्रह्मका परोक्षज्ञान लाभ करना चाहिए। तदनन्तर 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक भावनाका अभ्यास करना चाहिए। इस अवस्थामें कर्म आवश्यक है; जीवनपर्यन्त कर्मका त्याग नहीं होता। इसलिए ब्रह्मदत्तका भी मत ज्ञानकर्म-समुच्चयवाद ही है। सुरेश्वराचार्यने भी उनका उल्लेख समुच्चयवादीके रूपमें ही किया है। ज्ञानोत्तमने नैष्कर्म्यसिद्धिकी टीकामें उन्हें ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी कहा है—"वाक्यजन्यज्ञानोत्तरकालीनभावनोत्कर्षात् भावनाजन्यसाक्षात्कारलक्षण-ज्ञानान्तरेणैव अज्ञानस्य निवृत्तेः ज्ञानाभ्यासदशायां ज्ञानस्य कर्मणा समु-च्चयोपपत्तिः।" ब्रह्मदत्त कहते हैं कि मुमुक्षुको 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक अहंग्रहोपासना करनी चाहिए। बृहदारण्यक-उपनिषद्में भी (१।४।७।१०) 'आत्मेत्येव उपासीत' इत्याकारक उपदेश मिलता है। प्रश्न यह है कि जीव परमात्मासे परमार्थतः भिन्न है या अभिन्न। शङ्करने अभेदपक्ष माना है। परन्तु किसी-किसी वेदान्ताचार्यका यह मत है कि जीवके ब्रह्मसे अभिन्न न होनेपर भी अभेदभावनाकी आवश्यकता है (द्रष्टव्य—सम्बन्धवार्तिकश्लोक ७०२,८४५, ब्र०सू० भा ४।१।३; संक्षेप शारीरक १।३०७—३११; पञ्चपादिका पृ० २५२-२५३)। ब्रह्मदत्तके मतमें जीव और ब्रह्मका परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह ज्ञात नहीं होता। यदि भेद हो तो ऐक्यभावनाके बलसे मोक्षमें जीवका लय हो जायगा। यदि जीव ब्रह्मका अंश मान लिया जाय या दोनोंमें अभेद हो, तो भावनासे भेदभावकी निवृत्ति, अभेदका स्फुरण या साक्षात्कार तथा अन्तमें मोक्ष होगा। ब्रह्मदत्तकी दृष्टिसे 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके श्रवणसे आत्मस्वरूपविषयक अखण्डवृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि उन शब्दोंमें तादृश शक्ति नहीं है; परन्तु निदिध्यासन अथवा प्रसंख्यानमें ऐसी सामर्थ्य है। यदि प्रसंख्यान पूर्णतया सम्पन्न हो, तो इससे आत्माका अखण्डज्ञान आविर्भूत होता है (द्रष्टव्य—ब्र० सू० भा० नि० सा० १२८ से १३० और १५३)। शङ्करके मतसे इस मतका विरोध स्पष्ट ही प्रतीत होता है। सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें (१—६७) तथा पद्मपादने पञ्चपादिकामें (पृ० ९९) स्पष्ट ही कहा है कि महावाक्यसे साक्षात्-अपरोक्ष ही ज्ञान उत्पन्न होता है *।

* परन्तु मण्डनमिश्रका मत यह है (द्रष्टव्य—बृ० भा० टीका ४।४ श्लोक ७९६) कि शब्दसे अपरोक्षज्ञान हो ही नहीं सकता।

भारुचि—

रामानुजकृत वेदार्थसंग्रहमें (१५४ पृ०) प्राचीन कालके छः वेदान्ताचार्योंके नामका उल्लेख मिलता है। उन लोगोंने रामानुजसे पहले वेदान्तशास्त्र-ज्ञानके प्रचारके लिए ग्रन्थनिर्माण किया था। आचार्य रामानुजके सत्कारपूर्वक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि ये लोग निर्विशेष ब्रह्मवादी नहीं थे। इन आचार्योंके नाम हैं—भारुचि, टङ्क, बोधायन, गुहदेव, कपर्द्दिक और द्रमिलाचार्य (द्रविडाचार्य)। श्रीनिवासदासने यतीन्द्रमतदीपिकामें (पूना सं० पृ० २) व्यास, बोधायन, गुहदेव, भारुचि, ब्रह्मनन्दी, द्रमिडाचार्य, श्रीपरांकुश, नाथमुनि, और ज्योतीश्वर प्रभृतिके नामका इसी प्रसङ्गमें उल्लेख किया है। इनमें टङ्क और ब्रह्मनन्दी वैष्णवोंके मतसे अभिन्न हैं। इनका नाम तथा विवरण पहले दिया जा चुका है।

भारुचिके विषयमें विशेष परिज्ञान नहीं है। विज्ञानेश्वरकी मिताक्षरा (१।१८ और २।१२४), माधवाचार्यकृत पराशरसंहिताकी टीका (२।३, पृ० ५१०) एवं सरस्वतीविलास (पैराग्राफ १३३) प्रभृति ग्रन्थोंमें धर्मशास्त्रकार एक भारुचिका नाम उपलब्ध होता है। प्रतीत होता है कि इन्होंने विष्णुकृत धर्मसूत्रके ऊपर एक टीका लिखी थी। श्रीवैष्णवसम्प्रदायमें प्रसिद्ध भारुचि और धर्मशास्त्रकार भारुचि यदि एक माने जायँ, तो इनका समय खी० नवम सदीके प्रथमार्द्धमें माना जा सकता है (द्रष्टव्य—P. V. Kane कृत 'धर्मशास्त्रका इतिहास', पृ० २६५)।

द्रविडाचार्य भी प्राचीन वैदान्तिक थे। इन्होंने छान्दोग्य उपनिषत्पर अतिबृहत् भाष्य लिखा था। बृहदारण्यक उपनिषत् पर भी इनका भाष्य था, ऐसा प्रमाण मिलता है। माण्डूक्योपनिषत्के भाष्यमें (२।३२; २।२०) शङ्करने उनका 'आगमवित्' कहकर उल्लेख किया है और बृहदारण्यक उपनिषत्के भाष्यमें (पृ० २९७, पूना सं०) उनका उल्लेख 'सम्प्रदायवित्' कहकर किया गया है। जहाँ जहाँ द्रविडाचार्यका उल्लेख करना आवश्यक था वहाँ सम्मानके साथ ही किया गया है। कहीं भी उनके मतका खण्डन नहीं किया गया। इससे प्रतीत होता है कि द्रविडाचार्यका सिद्धान्त शङ्करके सिद्धान्तके प्रतिकूल नहीं था। छान्दोग्य उपनिषत्में जो 'तत्त्वमसि' महावाक्यका प्रसङ्ग आया है उसकी व्याख्यामें द्रविडाचार्यने व्याधसंवर्धित राजपुत्रकी आख्यायिकाका वर्णन किया

है। आनन्दगिरि कहते हैं कि 'तत्त्वमस्यादिवाक्यमैक्यपरम्, तच्छेषः सृष्ट्यादिवाक्यम्' यह मत आचार्य द्रविडका अङ्गीकृत है।

पहले कहा गया है कि रामानुजसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी द्रविडाचार्यनामके एक प्राचीन आचार्यका उल्लेख मिलता है। किसी-किसी का मत यह है कि वे द्रविडाचार्य शङ्करोक्त द्रविडसे भिन्न थे। उन्होंने पञ्चरात्रसिद्धान्तका अवलम्बन करके द्रविड भाषामें ग्रन्थरचना की थी। यामुनाचार्यने सिद्धित्रयमें इन्हीं आचार्यके विषयमें कहा है—"भगवता बादरायणेन इदमर्थमेव सूत्राणि प्रणीतानि विवृतानि च परिमितगम्भीरभाष्यकृता"। यहाँपर 'भाष्यकृत्' शब्दसे द्रविडाचार्य लिये गये हैं। किसी-किसीका मत है कि द्रविडसंहिताकार अलवर, शठकोप अथवा वकुलाभरण ही वैष्णवग्रन्थोंमें द्रविडाचार्य नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन दोनों द्रविडोंकी परस्पर भिन्नता अथवा अभिन्नतामें अब तक कोई स्थिर सिद्धान्त तक नहीं पहुँचा। सर्वज्ञात्ममुनिने संक्षेपशारीरकमें [३।२२१] ब्रह्मनन्दिग्रन्थका द्रविडभाष्यसे जिन वचनोंका उद्धार किया है, वे रामानुजसे उद्धृत द्रविड़भाष्य-वचनोंसे अभिन्न दीख पड़ते हैं। इसी लिए किसी-किसीके मतसे शङ्करसम्प्रदायमें प्रसिद्ध द्रविड और रामानुजसम्प्रदायमें प्रसिद्ध द्रविड एक ही व्यक्ति हैं, भिन्न नहीं हैं।

सुन्दरपाण्ड्य—

भगवान् शङ्करके पहले सुन्दरपाण्ड्यनामक आचार्यने एक कारिकाबद्ध वार्त्तिककी रचना की थी। यह वार्तिक ब्रह्मसूत्रके किसी प्राचीन भाष्य या वृत्तिका अवलम्बन करके बनाया गया था। परन्तु इस वृत्ति या भाष्यका ठीक ठीक पता नहीं लगता। इस वृत्तिके निर्माता बोधायन थे, या उपवर्ष थे, अथवा और कोई प्राचीन आचार्य, इस विषयमें निश्चितरूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु समन्वयाधिकरणके भाष्यके अन्तमें (१ । १ । ४) इस वार्तिकग्रन्थसे शङ्कराचार्यने स्वयं 'अपि चाऽऽहुः' कहकर तीन श्लोक उद्धृत किये हैं—

"अपि चाऽऽहुः—

'गौणमिथ्यात्मनोऽसत्त्वे पुत्रदेहादिबाधनात्।
सद्ब्रह्मात्माहमित्येवंबोधे कार्यं कथं भवेत्॥
अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात् प्राक् प्रमातृत्वमात्मनः।
अन्विष्टः स्यात् प्रमातैव पाप्मदोषादिवर्जितः॥

देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः ।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वाऽऽत्मनिश्चयात् ॥' इति ।"

इसका तात्पर्य यह है कि जब तक 'अहं ब्रह्मास्मि'इत्याकारक ब्रह्मज्ञानका उदय नहीं होता, तब तक सब प्रकारकी विधियाँ और प्रमाण सार्थक हैं। आत्मवस्तु हेय भी नहीं है और उपादेय भी नहीं है। यह अद्वैत है, इस प्रकार आत्माके बोधमें प्रमाणकी अपेक्षा ही नहीं है, क्योंकि उस समय प्रमाता भी नहीं रहता और विषय भी नहीं रहता। वाचस्पतिमिश्रने भामतीमें इन श्लोकोंका 'ब्रह्मविदां गाथा' कहकर वर्णन किया है। परन्तु पद्मपादकृत पञ्चपादिकाके ऊपर 'प्रबोधपरिशोधिनी' नामकी एक टीका है, जिसका रचयिता नरसिंहस्वरूपका शिष्य आत्मस्वरूप है। इस टीकासे पता चलता है कि ये तीनों श्लोक सुन्दरपाण्ड्यकृत हैं। सूतसंहिताकी माधवमन्त्रिकृत तात्पर्यदीपिकानामकी टीकामें भी कहा गया है कि इन श्लोकोंके अन्तर्गत तृतीय श्लोक—अर्थात् 'देहात्मप्रत्ययो यद्वत्'—सुन्दरपाण्ड्यकृत वार्तिकसे लिया गया है। अमलानन्दकृत कल्पतरुमें (३।३।२५) सुन्दरपाण्ड्यके 'निःश्रेण्यारोहणप्राप्यम्' प्रभृति और तीन वचन तथा तन्त्रवार्तिकमें (बनारस सं० ८५२-८५३ पृ०) ये तीन और 'तेन यद्यपि सामर्थ्यम्' प्रभृति दो कुल पाँच वचन उद्धृत हुए हैं। न्यायसुधामें (पृ० १२२८) ये पाँच श्लोक 'वृद्धानाम्' के नामसे उद्धृत किये गये हैं। किसी-किसी आचार्यके मतसे सुन्दरपाण्ड्यका समय ६५० खीष्टाब्द है। सुन्दरपाण्ड्य शैव वेदान्ती थे, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है। किसी पण्डितके मतमें यह राजा नेडुमारण नायनरका नामान्तर है*। भट्ट कुमारिलने तन्त्रवार्तिकके दूसरे स्थानमें

---

* इस विषयका विशेष विवरण म० म० कुप्पूस्वामी शास्त्रीके द्वारा लिखित 'Some Problems of Identity in the Cultural History of Ancient India' नामक लेखमें देखना चाहिए। यह लेख Journal of Oriental Research Madras नामक पत्रिकाके प्रथम खण्डमें (पृ० १-१५) प्रकाशित हुआ था। प्रसङ्गतः उक्त लेखकका दूसरा लेख भी देखना चाहिए (Proceedings of Third Oriental Conference, पृ० ४६५-४६८)। ये पाण्ड्यराज कुब्जवर्द्धन अथवा कुलपाण्ड्य नामसे भी परिचित थे। किसी-किसीके मतमें अरिकेसरी इनकी उपाधि थी। प्रसिद्ध शैवाचार्य तिरुज्ञान सम्बन्धर इनके समकालीन थे। इन्हींके प्रभावसे प्रभावित होकर सुन्दरपाण्ड्यने जैन धर्मको छोड़कर शैवधर्मका ग्रहण किया था और अपनी साधनसम्पत्तिके प्रभावसे ६३ शैवाचार्योंके मध्यमें स्थान प्राप्त किया था। इन्होंने चोल-राजकुमारीसे विवाह किया था।

(पृ० २८०–२८१ तथा ३५७) 'आह च' कहकर दो श्लोक उद्धृत किये हैं। न्यायसुधाके मतसे ये भी वृद्धवचन हैं। ये वृद्ध सुन्दरपाण्ड्य ही हैं, दूसरा कोई नहीं। प्रतीत होता है कि सुन्दरपाण्ड्यने पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसापर एक वार्तिककी रचना की थी।

शङ्कराचार्यकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य—

ब्रह्मसूत्रपर अनेक भाष्य हैं। परन्तु उनमेंसे भगवान् शङ्कराचार्यके भाष्यने ही विशेष ख्याति प्राप्त की है। शङ्कराचार्यसे प्राचीन आचार्योंकी भाँति शङ्कराचार्यसे अर्वाचीन विभिन्न आचार्योंने विभिन्न पक्षका अवलम्बन करके वेदान्तसूत्रके ऊपर अपने-अपने मतके अनुकूल भाष्य बनाये थे। प्राचीन समयमें उपवर्ष, बोधायन, ब्रह्मदत्त, भर्तृप्रपञ्च, भर्तृहरि, द्रमिड़ाचार्य प्रभृति वेदान्ताचार्योंके नाम और सिद्धान्त अर्वाचीन ग्रन्थोंमें संगृहीत दीख पड़ते हैं। सम्भव है, इनमेंसे कोई-कोई भाष्यकार भी रहे हों। अर्वाचीन समयमें भास्कराचार्य, यादवप्रकाश, रामानुज, श्रीकण्ठ, निम्बार्क, मध्व और बल्लभके नाम विशेष रूपसे उल्लेख योग्य हैं।

शङ्कराचार्यने बादरायणके सूत्रोंपर क्यों भाष्यनिर्माण किया, यह ज्ञातव्य विषय है। मालूम होता है कि बौद्ध आदि सम्प्रदायोंके विस्तारसे वेदान्तके ये प्राचीन ग्रन्थ तथा सम्प्रदाय प्रायः विच्छिन्न हो गये थे। इसलिए भाष्यनिर्माणका मुख्य प्रयोजन वैदिक धर्मका पुनरुज्जीवन ही प्रतीत होता है। तर्कपादमें जिन सम्प्रदायोंका खण्डन हुआ है, वे सम्पूर्णतः या किसी अंशमें अवैदिक हैं। उन सब प्राचीन मतोंका विशेष प्रादुर्भाव उसी समयमें हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। तात्कालिक वैदिक सम्प्रदायने बौद्ध, जैन, पाशुपत, पाञ्चरात्र, सांख्य-योग तथा न्याय-वैशेषिक आदि सब मतोंका वैदिक सिद्धान्तरूपमें ग्रहण नहीं किया था। इनके अभ्युदयसे वैदिक मत धीरे-धीरे म्लान हो रहा था। इसलिए उस समय यथायथभावसे वैदिकसिद्धान्तका प्रतिपादन करना आवश्यक प्रतीत हुआ था।

शङ्करकी गुरुपरम्परा—

भगवान् शङ्कराचार्यजीके गुरुका नाम गोविन्दपाद तथा उनके गुरुका नाम गौड़पादाचार्य था। गौड़पादाचार्य तक गुरुपरम्पराको ऐतिहासिक कालके अन्तर्गत माननेमें कोई मतभेद नहीं है। परन्तु गौड़पादके गुरु शुकदेव तथा उनके गुरु व्यास, इसी क्रमसे प्राचीन गुरुपरम्परा वर्तमान ऐतिहासिक

विचारके बहिर्भूत है। यदि इस सम्प्रदायको, जिसका वर्णन साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें मिलता है, सत्य मान लिया जाय, तो यह भी मानना होगा कि व्यासपुत्र शुकने सिद्धशरीरमें अथवा निर्माणशरीरमें आविर्भूत होकर गौड़पादाचार्यको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था। जिस प्रकार परमर्षि भगवान् कपिलने निर्माणकाय अवलम्बन करके जिज्ञासु शिष्य आसुरिको षष्टितन्त्रका उपदेश दिया था, उसी रीतिसे भगवान् शुकने भी गौड़पादाचार्यको विद्योपदेश दिया होगा। गोविन्दभगवत्पादने किसी वेदान्तग्रन्थकी रचना की थी, ऐसी प्रसिद्धि नहीं है। रसहृदयनामक एक ग्रन्थ गोविन्दभगवत्पादका बनाया हुआ अवश्य मिलता है, परन्तु वह रसायनशास्त्रका है। माधवाचार्यकृत सर्वदर्शनसंग्रहके रसेश्वर-दर्शनप्रकरणमें इस ग्रन्थका प्रामाण्य स्वीकार किया गया है। गोविन्दपाद नर्मदातटपर रहते थे। वे महायोगी थे और उनका देह रसप्रक्रियासे सिद्ध था, ऐसी किंवदन्ती अब तक साधकमण्डलमें सुनी जाती है। यह भी प्रसिद्ध है कि उनका देह वस्तुतः एक हज़ार वर्षसे स्थूल जगत्में रहनेपर भी ऐसा मालूम होता था कि उसमें किञ्चिन्मात्र भी जराका आविर्भाव नहीं हुआ। वे नित्य ही षोडशवर्षीय प्रतीत होते थे। वस्तुतः गोविन्दपाद कौन थे, इसका ऐतिहासिक विवरण प्राप्त करना असम्भव है। *

विद्यारण्यके मतसे गोविन्दपाद महाभाष्यकार पतञ्जलिके रूपान्तर हैं। †

---

* राजवाड़ेकथा नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जिनसेन, गुणभद्र और शङ्कराचार्यके गुरु गोविन्दपाद समकालीन थे। इस ग्रन्थके अनुसार जिनसेनका छात्र गुणभद्र था और उसका छात्र गोविन्दपाद। भट्टारक गोविन्दपुत्र हस्तिमल्लने स्वरचित विक्रान्तकौरव नामक नाटकके अन्तमें कविप्रशस्तिमें लिखा है कि गुणभद्र जिनसेनका शिष्य था और गोविन्द गुणभद्रकी शिष्यपरम्परामें अन्यतम था। यह गोविन्द पृथक् आचार्यका नाम था। इसमें सन्देह नहीं कि जिनसेनने ७०५ शकाब्दमें अर्थात् ७८३ सन् में हरिवंश बनाया था। इस ग्रन्थमें लिखा है कि ये तीनों आचार्य धारापति भोजके सभा-पण्डित थे। परन्तु यह लेख प्रामाणिक नहीं हो सकता, क्योंकि प्रसिद्ध राजा भोजका काल ११वीं शताब्दी है। कोई-कोई समझते हैं कि ये भोज धारापति प्रसिद्ध भोज नहीं हैं, परन्तु कान्यकुब्जके गुप्तवंशीय कोई राजा हैं, इत्यादि (द्रष्टव्य—Proceedings of Third Oriental Conference, p. 224). प्रभावकचरितमें लिखा है कि बप्पभट्टि, गोविन्द प्रभृति समकालीन थे। ८३९ खीष्टाब्दमें बप्पभट्टिके मरणके अनन्तर गोविन्दको राजा भोजने अपनी सभामें बुलाया था। बप्पभट्टिका जन्मकाल ७४४ खी० है। ये गोविन्द लोकोत्तर पण्डित थे, यह बप्पभट्टिके वचनसे भी प्रतीत होता है। बप्पभट्टिने वाक्पतिके पाण्डित्यकी प्रशंसा विशेष रूपसे की है।

† द्रष्टव्य—शङ्करदिग्विजय ५।९४।

आचार्य गौड़पाद माण्डूक्यकारिकाओंके प्रणेता थे। माण्डूक्योपनिषत् दश उपनिषदोंके अन्तर्गत है। यह ग्रन्थ परिमाणमें क्षुद्र होनेपर भी अत्यन्त सारवान् है। मुक्तिकोपनिषत्में इसकी अत्यधिक प्रशंसा मिलती है (१-२६—२९)। इसमें लिखा है कि एकमात्र माण्डूक्य-उपनिषत् ही मुमुक्षुओंको मुक्ति देनेमें समर्थ है। इस उपनिषत्में केवल १२ वाक्य हैं। इनमेंसे प्रथम ७ वाक्य नृसिंहपूर्वोत्तरतापिनी और रामोत्तरतापिनीमें भी उपलब्ध होते हैं। इस उपनिषत्पर आचार्य गौड़पादने परिशिष्टरूपमें एक अच्छे कारिका-ग्रन्थका निर्माण किया है। उन्होंने कारिकाओंको ४ प्रकरणोंमें विभक्त किया है—(१) आगमप्रकरण कारिकासंख्या २९, (२) वैतथ्यप्रकरण का० सं० ३८, (३) अद्वैतप्रकरण का० सं० ४८, (४) अलातशान्तिप्रकरण का० सं० १००। सब मिलाकर २१५ कारिकाएँ हैं। इनमें अन्तिम ३ प्रकरणोंकी कारिकाएँ क्रमबद्ध हैं। परन्तु प्रथम प्रकरणकी कारिकाएँ माण्डूक्योपनिषत्के वाक्योंके साथ मिली हुई हैं, षष्ठ वाक्यके बाद ९ कारिकाएँ हैं, सप्तमके बाद ९, एकादशके बाद ५, तथा द्वादशके बाद ६। आगमप्रकरणकी २९ करिकाओंका ऐसा ही सन्निवेश है।

अद्वैतमतमें माण्डूक्य-उपनिषत्के वाक्य श्रुतिरूप माने जाते हैं और कारिकांश गौड़पादकृत है, परन्तु मध्व अथवा द्वैतसम्प्रदायके मतसे प्रथम प्रकरणकी कारिकाएँ माण्डूक्य-उपनिषत्की अंश और श्रुतिरूप हैं—ये कारिकाएँ गौड़पादकृत नहीं हैं। अन्तिम तीन प्रकरणोंकी कारिकाएँ गौड़-पादकृत हैं। *

---

* किसी-किसी पण्डितके मतसे ये दोनों ही मत भ्रान्त हैं। इस मतमें गौड़पाद केवल २१५ कारिकाओंके ही निर्माता नहीं हैं, बल्कि मा० उ० के १२ गद्यवाक्योंके निर्माता भी गौड़पाद ही हैं। यहाँ जो कुछ कहा गया है वह प्रचलित मतके अनुसार कहा गया है, ऐसा समझना चाहिए। परन्तु पण्डित लोग गौड़पादके विषयमें एकमत नहीं हैं। डा० व्वालेसर (Walleser) कहते हैं (Der Aeltere Vedanta, pp. 5, etc.) कि माण्डूक्यकारिका ख्री० षष्ठ शताब्दीके बीचमें बनी हुई है। इनके मतमें गौड़पाद किसी व्यक्तिका नाम नहीं, प्रत्युत एक सम्प्रदायका नाम है। सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कहा है (४।४१ आदि) कि ये सब कारिकाएँ गौड़पादके अभिमत हैं, द्रविड़सम्प्रदायके अभिमत नहीं हैं। इसको देखकर डा० वेलवलकर और डा० रानाडेने अपने ग्रन्थमें विशेषरूपसे सन्देह किया है कि गौड़पाद किसी व्यक्तिका नाम है या नहीं। वैंकटसुब्बायननामक पण्डितने यह

उत्तरगीता तथा सांख्यकारिकाके टीकाकार भी गौड़पाद हैं। परन्तु ये माण्डूक्यकारिकाकारसे अभिन्न नहीं प्रतीत होते हैं। रामभद्रदीक्षितके पतञ्जलिचरितनामक ग्रन्थमें लिखा है—आचार्य गौड़पाद भाष्यकार पतञ्जलिके शिष्य थे। प्रसिद्ध है कि पतञ्जलि पर्दाके आड़से बहुत-से शिष्योंको महाभाष्य पढ़ाते थे। किसी समय शिष्योंने उत्सुक होकर पर्देके छिद्रसे देखा कि स्वयं आदि शेष सहस्र मस्तक और सहस्र जिह्वाएँ धारण किये वहाँ विराजमान हैं। शिष्योंके ऐसे व्यवहारसे शेषरूपी पतञ्जलिकी क्रोधाग्नि प्रदीप्त हुई और उससे सब शिष्य दग्ध हो गये। परन्तु शिष्यमण्डलीमेंसे एक शिष्य पहले ही बाहर चला गया था। उसने इस समय आकर क्षमाप्रार्थना की। इस शिष्यका नाम गौड़पाद था। पतञ्जलिने उसे ब्रह्मराक्षस होनेका शाप दिया, परन्तु साथ ही यह भी कहा कि यदि किसी समय अच्छा शिष्य मिल जायगा, तो तुम्हारी शापनिवृत्ति हो जायगी। इसके बाद यह शिष्य ब्रह्मराक्षस होकर लोगोंसे पूछता था—'पच्' धातुके निष्ठाका रूप क्या है। प्रायः सभी लोग उत्तर देते थे—'पचितम्' होता है; किसीके मुँहसे शुद्धरूप 'पक्वम्' निकला ही नहीं। जिसका उत्तर अशुद्ध होता था उसको ब्रह्मराक्षस उसी समय खा जाता था। बहुत दिनोंके

दिखानेकी कोशिश की है कि (Indian Antiquary, October, 1933, pp. 192-3) उक्त सन्देह अमूलक है। नैष्कर्म्यसिद्धिमें (४।४१-४४ तक) लिखा है—

> कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ।
> प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौ तौ तुर्ये न सिद्ध्यतः।
> अन्यथा गृह्णतस्स्वप्नं निद्रातत्त्वमजानतः।
> विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते॥

तथा भगवत्पादीयमुदाहरणम्—

> सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं बीजं स्वप्नप्रबोधयोः।
> आत्मबोधं प्रदग्धं स्याद् बीजं दग्धं यथाभवम्॥
> एवं गौडैर्द्राविडैर्नः पूज्यैरर्थः प्रकाशितः।

यहाँ 'कार्यकारण' प्रभृति दो श्लोक गौड़पादकारिकाके प्रथम प्रकरणके ११वें और १५वें श्लोक हैं। 'सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानम्' यह श्लोक शङ्कराचार्यकृत उपदेशसाहस्रीके १७वें प्रकरणका २६वाँ श्लोक है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि सुरेश्वराचार्यने 'गौडैः' पदसे गौडपादाचार्य और 'द्राविडैः'से शङ्कराचार्यको लक्ष्य किया है। अत एव प्रकट है कि ये दोनों पद सम्प्रदायविशेषके वाचक नहीं हैं।

बाद एक शिष्यसे ठीक उत्तर मिला, यह उज्जैनका एक ब्राह्मण था; इसका नाम चन्द्र था। *

गौड़पादने इन्हें महाभाष्यकी पूर्ण विद्या दी। चन्द्रने क्षिप्रताके साथ सारा महाभाष्य लिख लिया। इसको लेकर चन्द्र उज्जैनको लौट गये। प्रसिद्धि है कि चन्द्राचार्यके—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिकी कन्याके साथ—चार विवाह हुए थे। चारों स्त्रियोंके चार पुत्र भी हुए थे। वे वररुचि, विक्रम, भट्टि और भर्तृहरि थे। भर्तृहरि अत्यन्त बुद्धिमान् थे। चन्द्राचार्यने उन्हें महाभाष्य पढ़ाया था। भर्तृहरि महावैयाकरण हुए, परन्तु अहंकारके आधिक्यसे उनका, एक लाख २५ हज़ार कारिकात्मक, ग्रन्थ नष्ट हो गया। अब गौड़पादने शापमुक्त होकर भाग्यवश व्यासपुत्र शुकके दर्शन पाये और प्रार्थनापूर्वक उनसे यथा-विधि संन्यास ग्रहण किया। अन्तमें उन्होंने हिमालयमें जाकर योगाभ्यास किया—ऐसी प्रसिद्धि है। तक्षशिलाके शाक्यवंशीय राजा प्रावृती और अयकुन्य, दामिश प्रभृति अपरान्तदेशीय योगिगण उनका बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने हिमालयके बौद्ध राजा अयाचार्यको दीक्षा दी थी। ये सब विषय आत्मबोधके गौड़पादोल्लास ग्रन्थमें लिखित हैं।† गौड़पादने चन्द्राचार्यको संन्यास देकर उनका नाम गोविन्द रखा। यही गोविन्द शङ्कराचार्य भगवान्के गुरु हैं। गोविन्द संन्यास लेकर नर्मदातटपर पुत्र भर्तृहरिके साथ वास करते थे और गोविन्दनामका जप करते थे। शङ्कराचार्यजी, संन्यास लेनेके लिए, इन्हींके पास आये थे।

भगवान् शङ्कराचार्यका आविर्भावकाल—

भगवान् शङ्कराचार्यका आविर्भाव और तिरोभाव कब हुआ था इस विषयमें अनेक मतमतान्तर हैं। खीष्टसे पूर्व षष्ठ शताब्दीसे लेकर खीष्टसे अनन्तर नवम शताब्दी तक किसी समयमें इनका आविर्भाव हुआ था, यह सब लोग मानते हैं; किन्तु किस वर्षमें उनकी उत्पत्ति हुई थी इसका अभी तक पक्का निश्चय नहीं हो सका है।

पहला मत यह है कि शङ्कराचार्यने खी० पू० ५०८ वर्षमें जन्मग्रहण

---

* राजतरङ्गिणीमें [१७६] लिखा है कि चन्द्राचार्यने काश्मीरराज अभिमन्युके समयमें काश्मीर जाकर वहाँ महाभाष्यका प्रचार किया था। क्या ये दोनों चन्द्र एक ही व्यक्ति थे?

† द्रष्टव्य—एन्. वेंकटरमणकृत श्रीशङ्कराचार्य, पृष्ठ २५।

किया था तथा ख्री० पू० ४७६ वर्षमें (२६२५ कलि वर्षमें), ३२ वर्षकी अवस्थामें, देहत्याग किया था। जो लोग इस मतको मानते हैं उनकी दृष्टिमें प्रचलित शङ्करदिग्विजय आदि ग्रन्थोंकी अपेक्षा सर्वज्ञ सदाशिवबोधकृत पुण्यश्लोक-मञ्जरी, आत्मबोधरचित उसका परिशिष्ट, सदाशिवब्रह्मेन्द्रकृत गुरुरत्नमाला तथा आत्मबोधकृत गुरुरत्नमालाटीका—सुषमा—इन ग्रन्थोंका प्रामाण्य अधिक है। इन सभी ग्रन्थकारोंका काञ्चीवर्ती कामकोटिपीठसे सम्बन्ध है। इस मतमें ५ विभिन्न शङ्करोंके नामसाम्यसे कुछ गड़बड़ होनेके कारण आदिशङ्करके समय-निरूपणमें कठिनाई पड़ रही है। पहले जो समय बतलाया है वह आदि-शङ्करका है। इसके पश्चात् कृपाशङ्कर (ति० का० ६९ ख्री०), उज्ज्वलशङ्कर (ति० का० ३६७ ख्री०), मूकशङ्कर (ति० का० ४३७ ख्री०) और अभिनव-शङ्कर (ति० का० ८४० ख्री०) आविर्भूत हुए थे। ये काञ्चीके पीठाधीश सर्वज्ञात्मासे यथाक्रम सप्तम, चतुर्दश, अष्टादश और षट्त्रिंश स्थानापन्न काञ्ची-मठके अधीश थे।

काञ्चीमठ तथा द्वारिकामठमें जो गुरुपरम्पराकाल* प्रसिद्ध है उसके अनुसार शङ्कर ख्री० पू० ५म शताब्दीके प्रतीत होते हैं। परन्तु एक मतमें शङ्करका जन्मकाल ४७६ ख्री० पू० और दूसरे मतमें उनका निर्वाणकाल ४७५ ख्री० पू० है, इतना ही काञ्ची और द्वारिकाके मतमें भेद है।

किसी-किसीके मतमें ख्री० पू० ४४ में शङ्करका आविर्भाव-काल माना जाता है।

केरलोत्पत्तिके मतानुसार शङ्करका आविर्भाव काल ख्री० ४र्थ शतक है। इस मतमें शङ्करका जीवनकाल ३२ वर्षके स्थानमें ३८ वर्ष माना जाता है।†

षष्ठ शताब्दीके अन्तमें शङ्कराचार्य आविर्भूत हुए थे, यह भी एक मत है।

वर्नेलने अपने 'South Indian Palaeography' नामक ग्रन्थमें [पृ० ३७-१११] तथा सिवेलने List of antiquities in Madras नामक ग्रन्थमें

---

* काञ्चीकी गुरुपरम्परा एन्० वेंकटरमणकृत "Sankaracharya the Great and his successors in Kanchi" नामक ग्रन्थमें (१९२३) और द्वारिकाकी गुरुपरम्परामूलक काल Theosophist पत्रके सोलहवें खण्डका ३य तथा ५म संख्यामें, बाबू गोविन्ददासके लेखमें, देखना चाहिए।

† द्रष्टव्य—Indian Antiquary, p. 282.

(पृ० १७७) कहा है कि शङ्कराचार्यका आविर्भावकाल खी० ७वीं शताब्दी है। वर्तमान समयमें श्रीयुत राजेन्द्रनाथ घोष महाशयने विभिन्न प्रकारके प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि शङ्कराचार्य ६०८ शकाब्द अथवा ६८६ खीष्टाब्दमें आविर्भूत हुए थे *। वे कहते हैं कि शङ्कराचार्यने ३४ वर्षकी अवस्थामें देहत्याग किया था। उनके कथनका मूल महानुभव-सम्प्रदायके दर्शनप्रकाशनामक ग्रन्थमें उद्धृत शङ्करपद्धतिका वचन है। इस ग्रन्थमें शङ्करका तिरोभावकाल 'युग्मेपयोधि रसामित' शाकमें कहा गया है। इससे उनका जन्मकाल ६४२ शाके संवत्सरमें प्राप्त होता है। 'रसा'पद एक अथवा रसातल समझकर छः माना जा सकता है। घोष महाशय कहते हैं कि छः मानना ही युक्तिसङ्गत है। एक माननेमें असंभव दोष आ जाता है। इसके अनुसार ६४२+७८ अर्थात् ७२० खीष्टाब्दमें शङ्करका मृत्युकाल प्राप्त होता है।

शङ्कर अष्टम शताब्दीमें थे, यह भी एक मत है। अध्यापक वेवरने प्राचीनसमयमें इस मतका समर्थन किया था †। Lewis Rice ने शृङ्गेरी मठके गुरुपरम्पराकालको एक एक करके जोड़कर अनुमान किया था कि शङ्कर ७४० से ७६७ के बीचमें जीवित थे ‡।

एक मत यह भी है कि शङ्कराचार्य ७८८ खी० में आविर्भूत होकर ३२ वर्षकी अवस्थामें अर्थात् ८२० खीष्टाब्दमें तिरोहित हुए थे। × आजकल

---

* द्रष्टव्य—आचार्य शङ्कर और रामानुज (बँगला), पृ० ७८७–८०७।

† द्रष्टव्य—History of Indian Literature, p. 51, note.

‡ द्रष्टव्य—Proceedings of Third Oriental Conference, p. 225.

× नीलकण्ठ भट्टकृत शङ्करमन्दारसौरभमें भी यही मत गृहीत हुआ है (द्रष्टव्य—आर्यविद्या-सुधाकर)। अध्यापक टीले ने अपने Outline of the History of Ancient Religions नामक ग्रन्थमें (पृ० १४१) इसी मतका ग्रहण किया है। स्वर्गत के० बी० पाठकको, बेलगाँवमें, तीन पत्रोंकी एक पुस्तक मिली थी। उसके अन्तमें ऐसा लिखा था—

"दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
स एव शङ्कराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः॥

निधिनागेभवह्न्यब्दे [३८८९ कल्यब्द=शकाब्द ७१०=खीष्टाब्द ७८८] विभवे शङ्करोदयः।

अष्टवर्षे चतुर्वेदान् द्वादशे सर्वशास्त्रकृत्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

अधिकांश प्रत्नतत्त्ववित् पण्डित इसी मतको मानते हैं। शङ्करके मुख्य शिष्य देवेश्वर अर्थात् सुरेश्वर आचार्यके शिष्य सर्वज्ञात्माने सङ्क्षेपशारीरकनामक एक अति उत्कृष्ट वेदान्तग्रन्थकी रचना की थी। जिस समय मनुकुलादित्य राज्य-शासन करते थे, उसी समय उक्त ग्रन्थका निर्माण हुआ था, ऐसा उसमें लिखा है—

'श्रीमत्यक्षतशासने मनुकुलादित्ये भुवं शासति'

डाक्टर भण्डारकरने अपने 'Early History of the Deccan' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि यह मानववंशका राजा आदित्य चालुक्य था—ऐसा अनुमान किया जा सकता है। परन्तु वस्तुतः चोलराजगण ही मनुसे सम्भूत हुए थे, ऐसी प्राचीनकालसे प्रसिद्धि है। मनु चोल प्रसिद्ध ही हैं; शिलालेख आदिमें भी मनुवंशीय चोल कहे गये हैं। इस वंशमें तीन राजे आदित्यनामसे प्रसिद्ध थे, उनमें सबसे प्राचीन आदित्य प्रथम परान्तकके पिता थे, जिनका काल प्रायः दशम शताब्दीके प्रथमार्धमें माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शङ्कराचार्य नवम शताब्दीके प्रथमांशमें ही जीवित थे।

भगवान् शङ्कराचार्य वस्तुतः किस समय प्रादुर्भूत हुए थे, कब तक जीवित रहे, कौन-कौन ग्रन्थ उन्होंने रचे और कौन-कौन कार्य किये, इसका इस समय यथार्थ निश्चय करना अत्यन्त कठिन है। शङ्करके चरितग्रन्थोंमें कहीं इन सब विषयोंमें अल्पाधिक आलोचना की गई है *।

कल्यब्दे चन्द्रनेत्राङ्कवह्न्यब्दे ३९३१ गुहाप्रवेशः।
वैशाखे पूर्णिमायान्तु शङ्करः शिवतामियात् ॥"

(द्रष्टव्य—के० वी० पाठककृत 'The Date of Sankaracharya' नामक लेख, Indian Antiquary, 1882, pp. 173-75). कृष्णब्रह्मानन्दकृत शङ्करविजयमें भी शङ्करका जन्मकाल इस प्रकारसे दिया गया है। यथा—

"निधिनागेभवह्न्यब्दे विभवे शङ्करोदयः।
कलौ तु शालिबाहस्य सखेन्दुशतसप्तके ॥ (७१०)
कल्यब्दे भूदृगङ्काग्निसम्मिते शङ्करो गुरुः।
शालिवाहशके त्वक्षिसिन्धुसप्तमितेऽभ्यगात् ॥"

अत एव शङ्करका आविर्भावकाल कल्यब्द ३८८९ अथवा शकाब्द ७१० और तिरोभावकाल कल्यब्द ३९२१ अथवा शकाब्द ७४२।

* शङ्करके चरितके विषयमें ये सब ग्रन्थ विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य हैं। १—माधवाचार्यकृत शङ्करदिग्विजय। इस ग्रन्थका ऐतिहासिक गौरव अधिक नहीं है, क्योंकि इसमें बाण, मयूर, दण्डी, अभिनवगुप्त तथा श्रीहर्ष, शङ्कराचार्यके समकालीन माने गये हैं। कई-एक विद्वान् इस माधवको

परन्तु इन सब ग्रन्थोंमें वर्णित बातोंमें परस्पर संवाद नहीं है। किसी-किसी अंशमें वर्णित विषयकी प्रामाणिकताके विषयमें ऐतिहासिक लोग सन्देह प्रकाशित करते हैं। शङ्करके आविर्भावकाल आदिके विषयमें पहले जो विभिन्न मतोंका उल्लेख किया गया है उससे प्रतीत होगा कि इस विषयमें भी पण्डितोंका मत-वैषम्य है। शङ्करके काल-निरूपणके विषयमें आलोचना करनेके समय निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है—(क) शङ्करके प्रधान शिष्य सुरेश्वराचार्यने अपने ग्रन्थमें बौद्धपण्डित धर्मकीर्तिका उल्लेख किया है। ये धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्धनैयायिक धर्मकीर्तिसे अभिन्न थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है *। (ख) शङ्करा-

---

भागवतचम्पूकार माधवसे (जिसको 'नवकालिदास'की उपाधि दी गई थी) अभिन्न समझते हैं। यह ग्रन्थ विद्यारण्यका नहीं है। इसमें मङ्गल-श्लोक ही केवल विद्यारण्यका है। २—शङ्करविजय-आनन्दगिरिकृत। प्रसिद्धि है कि ये आनन्दगिरि शङ्करके प्रशिष्य तथा त्रोटकके शिष्य थे। परन्तु यह प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि इस ग्रन्थमें उत्तरकालमें आविर्भूत आचार्योंका भी उल्लेख है। ३—राजचूडामणिकृत शङ्कराभ्युदय। ४—चिद्विलासेन्द्रकृत शङ्करविजय। ५—सदानन्दरचित शङ्करजय। ६—पुण्यश्लोकमञ्जरी—सर्वज्ञ सदाशिव-बोधकृत। ये ग्रन्थकार काञ्चीके शङ्करमठके अध्यक्ष थे। इस ग्रन्थमें १०९ श्लोक हैं। ७—पुण्यश्लोकमञ्जरीपरिशिष्ट—महादेवेन्द्रसरस्वतीशिष्य आत्मबोधकृत। ८—गुरु-रत्नमाला—काञ्चीमठाध्यक्ष परमशिवेन्द्रसरस्वतीशिष्य सदाशिवब्रह्मेन्द्रकृत। यह ग्रन्थ ८६ आर्या छन्दोंमें निबद्ध है। इस ग्रन्थपर आत्मबोधकृत टीका भी है। इसका निर्माण १६४२ शकाब्दमें हुआ था। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त स्कन्द-पुराणके नवमांशमें, मार्कण्डेयसंहितामें, शिवरहस्य-पुराणमें, गुरुमतमालिकामें तथा गुरुपरम्पराचरितमें भी शङ्करका चरित वर्णित है। विद्यारण्यकृत श्रीविद्यार्णव तथा शक्तिसङ्गम तन्त्रमें भी प्रसङ्गतः शङ्कर तथा शङ्करसम्प्रदायका वर्णन है। मलयालमभाषामें भी शङ्करका एक चरितग्रन्थ है।

* धर्मकीर्तिका समय प्रायः ६३५ से ६५० माना जा सकता है। ये धर्मकीर्ति नालन्दा विश्वविद्यालयके अध्यक्ष आचार्य धर्मपालके शिष्य थे और धर्मपालके परवर्ती नालन्दाके अध्यक्ष आचार्य शीलभद्रके सहाध्यायी थे। ये धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्धनैयायिक दिङ्नागके शिष्य ईश्वरसेनके भी शिष्य थे। इन्होंने प्रमाणवार्तिक, प्रमाणविनिश्चय, न्यायबिन्दु प्रभृति ग्रन्थोंका निर्माण कर बौद्धन्यायशास्त्रको विशेषरूपसे गौरवान्वित किया था। श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक प्रभृति मीमांसा ग्रन्थोंके रचयिता भट्ट कुमारिल इनके समकालीन थे, ऐसी प्रसिद्धि है। तिब्बतीय लामा तारा-नाथकृत बौद्धधर्मके इतिहाससे कुमारिल तथा धर्मकीर्तिका परस्पर कैसा संबन्ध था, इस विषयमें बहुत-सी बातें प्रतीत होती हैं। धर्मकीर्तिके प्रत्यक्षलक्षण—'कल्पनापोढमभ्रान्तम्' (द्रष्टव्य—न्यायबिन्दु ११ बनारस)—का श्लोकवार्तिकमें खण्डन किया गया है। यह लक्षण धर्मकीर्तिका ही है, दिङ्नागका नहीं, क्योंकि दिङ्नागके प्रत्यक्षलक्षणमें 'अभ्रान्त' यह विशेषण नहीं था। दिङ्नागाचार्यके प्रमाणसमुच्चयनामक ग्रन्थमें प्रत्यक्षलक्षणकारिका इस प्रकार दी गई है—

चार्यने स्वयं शारीरकभाष्यके द्वितीय अध्यायके द्वितीयपादके २८वें सूत्रके भाष्यमें धर्मकीर्तिकी एक कारिकाका कुछ अंश, योगाचारकी समालोचनाके प्रसङ्गमें, उद्धृत किया है। धर्मकीर्तिकी कारिका यह है—

'सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः।
भेदश्च भ्रान्तविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये ॥'

इस कारिकाके 'सहोपलम्भनियमादभेदः' इतने अंशका उल्लेख शङ्कराचार्यने किया है*। (ग) दिङ्नागकी आलम्बनपरीक्षासे भी शङ्करने 'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तत्' इस वचनका उद्धार किया है (२।२।२८)। (घ) ब्रह्मसूत्र (२।२।२२ तथा २।२।२४) के भाष्यमें शङ्कराचार्यने जिन दो बौद्धाचार्योंके वचनोंका उद्धार किया है, उनमेंसे पहला वचन गुणमतिकृत (६३०-६४० ख्री०) अभिधर्मकोशव्याख्यामें मिलता है। (ङ) जैनमतखण्डनप्रसङ्गमें शङ्करने जिस मतका उद्धार किया है वह दिगम्बराचार्य अकलङ्कके गुरु समन्तभद्रका प्रतीत होता है। भामतीकार वाचस्पतिमिश्रने इस प्रसङ्गमें समन्तभद्ररचित आप्तमीमांसाका वचन भी उद्धृत किया है—

'स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधेः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकृत् ॥' (२।२।३३)

अकलङ्क साहसतुङ्ग राजाके सभासद् थे। यह राजा साहसतुङ्ग राष्ट्रकूटराज दन्तिदुर्गका नामान्तर है। इनका शासनकाल ६७५ शकाब्द अथवा ७५३ ख्रीष्टाब्द है। वे अकलङ्क अष्टसाहस्रीकार विद्यानन्दके गुरु थे†।

नापि पुनः प्रत्यभिज्ञाऽनवस्था स्यात् स्मृतादिवत्। प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम् ॥ ३ ॥ (द्रष्टव्य—दिङ्नागकृत प्रमाणसमुच्चय, मैसूर संस्करण, पृ० ८)।

* इस श्लोककी प्रथम पङ्क्ति धर्मकीर्तिके प्रमाणविनिश्चय तथा दूसरी पङ्क्ति उनके प्रमाणवार्तिकमें मिलती है।

† महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषणका मत है कि अकलङ्क राष्ट्रकूटराज शुभतुङ्ग अथवा प्रथम कृष्णराजके (७५३-७७५) समकालीन थे। प्रसिद्धि है कि मान्यखेटके राजा शुभतुङ्गके दो पुत्र थे। प्रथमका नाम अकलङ्क और दूसरेका निष्कलङ्क था। अकलङ्क तीव्र वैराग्यवान् थे। उन्होंने राज्यसम्पत्तिका परिहार करके त्यागीका जीवन ग्रहण किया था। सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य समन्तभद्रकी आप्तमीमांसापर उन्होंने अष्टशती नामकी एक टीका लिखी थी। (१) न्यायविनिश्चय, (२) तत्त्वार्थवार्तिकव्याख्यानालङ्कार प्रभृति अनेक ग्रन्थ उन्होंने बनाये थे। समन्तभद्रने उमास्वातिकृततत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ऊपर एक बृहद् भाष्य बनाया था, जिसका नाम गन्धहस्तिमहाभाष्य रक्खा था। यह पुस्तक इस समय लुप्त हो गई है। इसीका उपोद्घातांश देवागमस्तोत्र अथवा आप्तमीमांसा नामसे प्रसिद्ध है।

आदिशङ्कराचार्यने कौन-कौन ग्रन्थ बनाये थे ?

आदिशङ्कराचार्यने कौन-कौन ग्रन्थ रचे, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। शङ्कराचार्यकी कृतिरूपसे प्रायः २०० ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके प्रकरणग्रन्थ, भाष्य, स्तोत्र प्रभृति नाना प्रकारके लेख और रचना इन्हीं २०० के अन्तर्गत हैं। शङ्कराचार्य-नामधारी अनेक व्यक्ति हो गये हैं। आदिशङ्कराचार्यद्वारा स्थापित मठोंमें जो आचार्यपदपर अभिषिक्त होते थे, वे सभी शङ्कराचार्य नामसे प्रसिद्ध होते थे। वर्तमान समयमें भी यही प्रणाली प्रचलित है। अत एव शङ्कराचार्य नामधारी बहुत व्यक्तियोंकी रचनाएँ एकत्र हो गई हैं। उनमेंसे आदि शङ्करकी रचनाओंको पृथक् कर लेना अत्यन्त कठिन है। यहाँपर यही ज्ञातव्य है कि ब्रह्मसूत्रपर शारीरकभाष्यका निर्माण करनेवाले शङ्कराचार्यने कौन-कौन ग्रन्थ बनाये थे। प्रसिद्धि है कि प्रस्थानत्रयपर ही उनके भाष्य हैं। ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता* तथा प्रधान कुछ उपनिषदों † पर ही उनके भाष्य हैं। गौड़-

* गीताभाष्यके विषयमें भी विभिन्न प्रकारके मत हैं। अधिकांश पण्डितोंका मत है कि यह आदिशङ्करका ही ग्रन्थ है, किन्तु इस प्रसङ्गमें विशेष विवरण जाननेके लिए B. N. Krishnamurti का लेख देखना चाहिये (Annals of Bhandarkar Institute, Vol. 14, 1933, pp. 39—60).

† केनोपनिषत्पर पदभाष्य तथा वाक्यभाष्य शङ्कराचार्य द्वारा निर्मित है, ऐसी प्रसिद्धि है। परन्तु वाक्यभाष्य शङ्करकी रचना नहीं है, ऐसी पण्डितोंकी शङ्का है। किसी-किसीका कहना है कि वाक्यभाष्य विद्याशङ्करकृत है। एक व्यक्ति द्वारा उनका बनाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि किसी-किसी स्थलमें दोनों भाष्योंमें मूलकी व्याख्या परस्पर भिन्न और विरुद्ध प्रतीत होती है (द्रष्टव्य—४।७।३२ और २।१।२)। मूल २।२ का पाठ पदभाष्य-मतमें 'नाहम्', किन्तु वाक्यभाष्यमतमें 'नाह' है। श्वेताश्वतर-उपनिषत्का भाष्य भी आदि-शङ्करकृत नहीं है, क्योंकि उसमें एक स्थानपर गौड़पादकी एक कारिकाका (३।३५), 'तथा च शुकशिष्यो गौडपादाचार्यः' कहकर, उद्धार किया गया है। शङ्कर जैसे महापण्डित, शिष्योंके आचारके विरुद्ध, अपने परमगुरुका नाम इस प्रकार लेंगे, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। शङ्कराचार्यने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें (१।४।१५; २।१।९) 'सम्प्रदायविदः' तथा 'वेदान्तार्थसम्प्रदायविदः', कहकर गौड़पादका उल्लेख किया है। पण्डित लोग कहते हैं कि माण्डूक्य उपनिषत्का भाष्य भी आदि शङ्करका नहीं है (द्रष्टव्य—Sir Asutosha Mukerji's Silver Jubilee Commemoration Volume, III-Orientalia, Part 2, pages 103—110)। इसका दो मङ्गल-श्लोक रचनाकी दृष्टिसे भाषामें अत्यन्त अपकृष्ट हैं। द्वितीय श्लोकमें छन्दोभङ्ग भी है। प्रथम तीन पङ्क्तियाँ मन्दाक्रान्ता छन्दमें हैं तथा चतुर्थ पङ्क्ति स्रग्धरा छन्दमें है।

पादकृत माण्डूक्यकारिकापर भी उनका भाष्य है। विष्णुसहस्रनामभाष्य और सनत्सुजातभाष्य भी प्राचीनकालसे ही आदिशङ्करकी कृतिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। हस्तामलकके ऊपर जो शङ्करकृत भाष्य मिलता है,—वह वस्तुतः शङ्करकृत है या उनके शिष्यका बनाया हुआ है अथवा किसी अन्य शङ्करका बनाया हुआ है, इसका निर्णय करना कठिन है। संन्यासिसम्प्रदायमें यह शङ्कराचार्यकी ही रचना मानी जाती है। शङ्कराचार्यका गायत्रीभाष्य प्रसिद्ध है। मण्डलब्राह्मणोपनिषत्के ऊपर राजयोगभाष्यनामक एक व्याख्यान मिलता है। यह भी आदिशङ्करकृत ही है, ऐसा ग्रन्थ देखनेसे प्रतीत होता है। यह ग्रन्थ मैसूरसे प्रकाशित हो गया है। सांख्यकारिकाके ऊपर जयमङ्गलानामक जो टीका प्रकाशित हुई है, किसी किसीके मतसे वह भी शङ्करकृत ही है। परन्तु इन पंक्तियोंके लेखकने उस ग्रन्थकी भूमिकामें यह प्रतिपादन करनेका प्रयत्न किया है कि वह टीका उन शङ्करार्य नामक पण्डितकी रचना है, जिन्होंने और-और ग्रन्थोंपर भी जयमङ्गला नामकी टीकाएँ बनाई हैं। विश्वास ही नहीं होता कि यह टीका आदिशङ्करकृत है। इनके अतिरिक्त विवेकचूड़ामणि, सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रह, उपदेशसाहस्री शङ्कराचार्यकी बनाई है*। प्रपञ्चसार, सौन्दर्यलहरी प्रभृति ग्रन्थोंके साथ शङ्करका नाम संसृष्ट है, किन्तु ये सब ग्रन्थ आदिशङ्कररचित हैं या नहीं, इस विषयमें विविध कारणोंसे ऐतिहासिकगण विशेष रूपसे सन्देह करते हैं। †

अन्तमें जो तीन श्लोक दिये गये हैं, उनमें व्याकरणकी अशुद्धि भी है। शङ्करने अपने ग्रन्थोंमें प्रायः कहीं मङ्गलाचरण किया ही नहीं है। तैत्तिरीयभाष्यका मङ्गलाचरण भी प्रक्षिप्त ही है। नृसिंहतापिनी-उपनिषत्के भाष्यकार भी एक शङ्कर हैं। वही प्रपञ्चसारके भी रचयिता हैं। इस भाष्यमें प्रपञ्चसारके छः वचन उद्धृत हुए हैं। नृसिंहतापिनी उपनिषत्के भाष्यमें भी व्याकरणकी अशुद्धियाँ बहुत हैं। माण्डूक्यकारिकाकी टीकामें व्याकरणकी अशुद्धियाँ हैं, किन्तु अपेक्षाकृत कम हैं। प्रपञ्चसार भी व्याकरण तथा छन्दकी अशुद्धियोंसे परिपूर्ण है, इस विषयमें विशेष लिखना अनावश्यक है। ईश, कठ, प्रश्न, मुण्डक, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक पर जो शाङ्करभाष्य है, वह सबको विदित ही है।

* उपदेशसाहस्रीसे सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें (अ० ४) अनेक वचनोंका उद्धार किया है। (इस ग्रन्थके ऊपर शुद्धानन्दके शिष्य आनन्दज्ञानकी, कृष्णतीर्थके शिष्य रामतीर्थकी और विद्याधामके शिष्य बोधनिधिकी टीकाएँ हैं।)

† परन्तु अमलानन्दने वेदान्तकल्पतरु नामक भामतीकी टीकामें (१।३।३३) प्रपञ्चसारको अमलानन्दकृत माना है। यथा—"तथाचावोचन्नाचार्याः प्रपञ्चसारे—अवनिजलानलमारुतविहायसां शक्तिभिश्च तद्बिम्बैः। सारूप्यमात्मनश्च प्रतिनीत्वा तत्तदाशु जयति सुधीः॥" यहाँपर

ग्रन्थकी पुष्पिकासे ज्ञात होता है कि सर्वसिद्धान्तसंग्रहनामक एक ग्रन्थ शङ्कराचार्यकृत है। किन्तु यह ग्रन्थ भी आदिशङ्करका नहीं है, क्योंकि इस ग्रन्थकारके

बिम्बशब्दसे भूतमण्डल (अर्थात् चतुरस्र, धनुषाकार, त्रिकोण, षट्कोण और बिन्दु), शक्तिशब्दसे निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीत ये पाँच प्रकारकी पृथिव्यादि शक्तियाँ समझनी चाहिएँ (अप्पय्यदीक्षितकृत 'परिमल' द्रष्टव्य)। प्रपञ्चसारविवरणमें लिखा है कि स्वयं शिवने ही शङ्कराचार्यरूपमें अवतीर्ण होकर प्रपञ्चसार नामक ग्रन्थ लिखा था। शारदातिलकके टीकाकार राघवभट्ट, षट्चक्र निरूपणके टीकाकार कालीचरण प्रभृति तत्त्ववित् पण्डितोंका भी यही मत है कि प्रपञ्चसार आदिशङ्करका ही बनाया हुआ है। विद्वद्वर Arthur Avallon ने भी किसी-किसी अंशमें इस मतका समर्थन किया है। अमरप्रकाशशिष्य उत्तमबोधाचार्यने प्रपञ्चसार-सम्बन्धदीपिका नामकी टीकामें लिखा है कि प्रपञ्चसार प्रपञ्चागमनामक किसी प्राचीन ग्रन्थका सारसंग्रह है (द्रष्टव्य—मद्रासकी सूची न० ५२९९)—यह वस्तुतः शङ्कररचित कोई अभिनव ग्रन्थ नहीं है। प्रपञ्चसारके ऊपर पद्मपादाचार्यकी टीका है। यदि इन पद्मपादाचार्यको आदिशङ्करके मुख्य शिष्य पञ्चपादिकाकार पद्मपादाचार्यसे अभिन्न माना जाय, तो प्रपञ्चसारको आदिशङ्करकी रचना मानना ही अधिक सङ्गत होगा। किन्तु भाषा तथा रचनाशैलीसे आधुनिक समालोचकोंकी दृष्टिमें यह ग्रन्थ शारीरकभाष्यकर्ताका प्रतीत नहीं होता। गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीकृत प्रपञ्चसारका एक सारसंग्रह ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ललितात्रिशतीके ऊपर भी शङ्कराचार्यके नामसे एक भाष्यग्रन्थ प्रसिद्ध है। यह भी त्रिपुरासम्प्रदायका ही है। दक्षिणामूर्तिस्तोत्रके आदिशङ्करकृत होनेमें कोई सन्देह नहीं है। उसके ऊपर सुरेश्वराचार्यकृत मानसोल्लासवार्तिक है। परन्तु उसके पर्यालोचनसे ज्ञात होता है कि यह षट्त्रिंशत्तत्त्ववादी आगमके मतानुसार ही लिखा गया था। शैवागमके कुछ पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग भी मूलस्तोत्र तथा वार्तिकमें मिलता है। सौन्दर्यलहरीके विषयमें यह मत है कि यह आदिशङ्करकृत स्तोत्र है। प्राचीन समयसे लेकर विभिन्न टीकाकारोंने इसी मतका समर्थन किया है। श्रीविद्यार्णवनामक तन्त्रग्रन्थमें शङ्कर तान्त्रिकसम्प्रदायके प्रवर्तक कहे गये हैं और उसमें तान्त्रिकगुरुपरम्पराका भी उल्लेख किया गया है। शक्तिसङ्गम आदि तन्त्रग्रन्थोंमें भी शङ्करका सम्बन्ध विशेषरूपसे दिखलाया गया है। शङ्करके परम गुरु गौड़पादकी सुभगोदयनामक तान्त्रिकस्तुति प्रसिद्ध है। गौड़पादकृत श्रीविद्यारत्नसूत्र भी तान्त्रिक ग्रन्थ है। परन्तु यह स्थान इस विषयकी विशेष आलोचनाका नहीं है; अत एव इस विषयका अधिक विस्तार यहाँपर नहीं किया है। तन्त्रशास्त्रमें और शङ्कराचार्योंका भी पता लगता है—तारारहस्यवृत्ति-(वासनातत्त्वबोधिनी)-कर्ता एक शङ्कराचार्यका नाम तन्त्रके इतिहासमें मिलता है। किन्तु इन्होंने उक्त ग्रन्थकी पुष्पिकामें अपना परिचय कमलाकरपुत्र और लम्बोदरपौत्र कहकर दिया है। सम्भव है, इन्हीं शङ्करने शिवार्चनमहारत्न, कुलमूलावतार, क्रमस्तव आदि ग्रन्थ बनाये हों। षट्चक्रभेदटिप्पणी भी इन्होंने बनाई होगी। ये बङ्गाली थे। इन्होंने अपना परिचय 'गौड़देशनिवासी महामहोपाध्याय श्रीशङ्करागमाचार्य' कह कर दिया है। ये कौल थे। इन्होंने कहा है—कुलागम अथवा कुलतन्त्रका आश्रय लिए

मतमें पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा तथा देवताकाण्ड (सङ्कर्षणकाण्ड),—ये तीनों ग्रन्थ एक शास्त्रके अन्तर्गत हैं। परन्तु शारीरकभाष्यके शङ्कराचार्यने दिखाया है कि (ब्र० सू० १।१।१) पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा अभिन्न शास्त्र नहीं हैं।

शङ्कराचार्यने बहुसंख्यक छोटे-छोटे ग्रन्थोंकी रचना की थी, जिनमें वेदान्ताधिकारके साधन वैराग्य आदि सम्पत्तियोंका वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थोंके कर्तृत्व तथा प्रामाण्यके विषयमें ठीक-ठीक विचार करना कठिन है। परन्तु प्राचीनकालसे ही विभिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न लिपियोंमें लिखे गये जितने ग्रन्थ, गोविन्दभगवत्पादशिष्य शङ्कर रचित कहे गये हैं, यथासम्भव उनकी एक सूची नीचे देनेका प्रयत्न करता हूँ। यह सूची सर्वथा अपूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। विभिन्न ग्रन्थागारोंकी हस्तलिखित पुस्तकोंका अन्वेषण करनेपर सम्भव है कि इस प्रकारके और भी ग्रन्थ मिल सकें। परन्तु तथापि जहाँ तक प्रसिद्ध क्षुद्र ग्रन्थोंका नामसंग्रह हो सका है उतना ही यहां लिखनेका प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस संग्रह पर विचार करनेका अवसर नहीं है। शुद्ध शङ्करके नामसे ये ग्रन्थ संसृष्ट हैं। इसीलिए इनका नाम यहाँ दिया गया है।

१—एकश्लोकी। इस नामसे पृथक्-पृथक् दो श्लोक वेदान्तके इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। उनमें एकके ऊपर गोपालयोगीन्द्रके शिष्य स्वयंप्रकाशयतिका 'स्वात्मदीपन' नामक व्याख्यान है।

२—कौपीनपञ्चक। इसका नामान्तर 'यतिपञ्चक' है।

३—अद्वैतपञ्चरत्न। कहीं-कहीं पर यह पुस्तक 'आत्मपञ्चक' अथवा 'अद्वैतपञ्चक' नामसे भी कही गई है। पञ्चक नाम होनेपर किसी-किसी स्थानमें एक श्लोक अधिक दीख पड़ता है।

४—आत्मबोध। गीर्वाणेन्द्रके शिष्य बोधेन्द्रने इसके ऊपर 'भावप्रकाशिका' नामक एक टीका लिखी थी। ये गीर्वाणेन्द्र किसी अद्वैतपीठके अध्यक्ष थे,

---

बिना किसीको सायुज्यमुक्ति नहीं मिल सकती। इनका मत है कि वामाचार, दक्षिणाचार तथा सिद्धान्ताचारसे केवल सालोक्यमुक्ति होती है। इस ग्रन्थकी एक प्रति नेपालदरबारके ग्रन्थागारमें है, इसमें प्रतिलिपि करनेका समय ल० सन् ५११ अर्थात् १६३० सन् लिखा है। तारारहस्यवृत्तिमें तारापज्झटिकास्तोत्र नामसे एक शङ्करकृत स्तोत्रका उल्लेख है; किन्तु ये कौन शङ्कर हैं, इसका पता नहीं चलता।

ऐसा प्रतीत होता है। टीकाकार बोधेन्द्र त्रिपुरसुन्दरीके उपासक थे। इन्होंने अपनी टीकामें लिखा है—

'श्रीचक्रमध्यनिलया समस्तगुणसेविता।
सा देवी त्रिपुरा तुष्टा वीक्षतां मत्कृतिं वराम् ॥ १ ॥'

(द्रष्टव्य—ताञ्जोर कैटलाग, पु० सं० ७१७४)

५—अद्वैतानुभूति।

६—अद्वैतरसमञ्जरी। सदाशिवेन्द्र सरस्वतीने भी इस नामसे एक पुस्तक रची थी।

७—अपरोक्षानुभूति। 'अपरोक्षानुभवामृत' नामसे भी एक शङ्कररचित प्रकरणका पता चलता है।

८—निर्वाणषट्क। इसका नामान्तर 'आत्मषट्क' और 'चिदानन्दषट्क' भी है।

९—पञ्चरत्न। इस ग्रन्थका नामान्तर 'उपदेशपञ्चक', 'पञ्चरत्नमालिका' अथवा 'साधकपञ्चक' है।

१०—निरञ्जनाष्टक।

११—स्वात्मप्रकाशिका।

१२—आर्यापञ्चक। इसपर सच्चिदानन्द सरस्वतीकी एक टीका है।

१३—विज्ञाननौका अथवा स्वरूपानुसन्धान।

१४—अनात्मश्रीविगर्हणप्रकरण।

१५—जीवन्मुक्तानन्दलहरी।

१६—गुर्वष्टक।

१७—केवलोऽहम्।

१८—परापूजा। इसका दूसरा नाम 'आत्मपूजा' है।

१९—चर्पटपञ्जरिका। कहीं-कहींपर 'द्वादशमञ्जरी' अथवा 'द्वादशपञ्जरिका' नामसे भी यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है। यह कहीं 'मोहमुद्गर' भी कहा गया है। किसी-किसी स्थानमें इन श्लोकोंके बदले दूसरे प्रकारके श्लोक 'मोहमुद्गर'में प्रसिद्ध हैं।

२०—निर्गुणमानसपूजा।

२१—प्रौढानुभूति।

२२—तत्त्वोपदेश।

२३—प्रश्नोत्तररत्नमालिका ।

२४—ब्रह्मनामावलीमाला (अथवा ब्रह्मज्ञानावलीमाला)

२५—निर्वाणमञ्जरी ।

२६—प्रातःस्मरणस्तोत्र ।

२७—धन्याष्टक ।

२८—मणिरत्नमाला ।

२९—मठाम्नाय । इसमें कुल ६५ श्लोक हैं ।

३०—ब्रह्मानुचिन्तन अथवा आत्मानुचिन्तन ।

३१—मनीषापञ्चक । इसमें चण्डालरूपी शिवका (शङ्कराचार्यके सहित संवादरूपमें) तत्त्वोपदेश है । इसके ऊपर सदाशिवेन्द्रकी एक टीका है । 'मधुमञ्जरी' नामसे गोपालबालयतिकृत एक और भी टीका है, जिसके निर्माताने अपना परिचय जगन्नाथमुनिका शिष्य कहकर दिया है । यदि ये जगन्नाथ-मुनि काशीके प्रसिद्ध जगन्नाथाश्रमसे अभिन्न हों, तो वे टीकाकार नृसिंहाश्रमके सतीर्थ ही होंगे । इस 'मनीषापञ्चक'से विलक्षण एक और भी 'मनीषापञ्चक' कहीं-कहींपर दीख पड़ता है । 'मनीषापञ्चक'के ऊपर हस्तामलककी टीका भी किसी-किसी संग्रहमें उपलब्ध होती है ।

३२—सदाचार ।

३३—सहजाष्टक ।

३४—स्वात्मनिरूपण । इसका नामान्तर 'वेदान्तार्या', 'बोधार्या', 'आत्म-बोध' या 'अनुभूतिरत्नमाला' है ।

३५—दशश्लोकी अथवा निर्वाणदशक । इसके ऊपर प्रसिद्ध वेदान्ताचार्य मधुसूदन सरस्वतीने 'सिद्धान्तबिन्दु' नामक व्याख्या लिखी है ।

३६—सारतत्त्वोपदेश ।

३७—वेदवेदान्ततत्त्वसार ।

३८—वाक्यवृत्ति । इसके ऊपर महायोगी माधवप्राज्ञके शिष्य विश्वेश्वर-पण्डितकी 'प्रकाशिका' नामक टीका है । रामानन्दयतिकी भी एक टीका है ।

३९—योगतारावली । इससे भिन्न भी एक 'योगतारावली' है, जिसका रचयिता नन्दिकेश्वर है ।

४०—लघुवाक्यवृत्ति । इसपर 'पुष्पाञ्जलि' नामकी एक टीका है । इस

टीकाकारका समय ज्ञात नहीं है, परन्तु इन्होंने विद्यारण्यका निर्देश किया है, अतः उनके ये परवर्ती होंगे ।

४१—ज्ञानसंन्यास ।

४२—बालबोधिनी ।

४३—चिदानन्दात्मकस्तोत्र ।

४४—महावाक्यमन्त्र ।

४५—महावाक्यविवरण अथवा महावाक्यदर्पण ।

४६—महावाक्यविवेक ।

४७—अष्टश्लोकी ।

४८—द्वादशमहावाक्यविवरण ।

४९—पञ्चीकरणप्रकरण । इसके ऊपर गोपालयोगीन्द्रके शिष्य स्वयंप्रकाशने 'विवरण' नामसे एक टीका लिखी है। स्वयंप्रकाशने शिवराम, पूर्णानन्द तथा पुरुषोत्तमनामक आचार्योंको अपना गुरु माना है। शङ्करके शिष्य सुरेश्वरने इसके ऊपर एक वार्तिककी रचना की है । इस वार्तिकके ऊपर 'विवरण' नामकी एक टीका शिवरामतीर्थकी बनाई हुई है । उस टीकाके ऊपर 'आभरण' नामकी एक और भी टीका मिलती है ।

५०—आत्मानात्मविवेक ।

५१—प्रबोधसुधाकर ।

५२—दक्षिणामूर्तिस्तोत्र । इस स्तोत्रके ऊपर सुरेश्वराचार्यने 'मानसोल्लास' नामसे वार्तिक तथा कैवल्यानन्दके शिष्य स्वयंप्रकाशयतिने 'तत्त्वसुधा' नामक एक टीका बनाई है ।

५३—वाक्यसुधा । वस्तुतः यह ग्रन्थ शङ्करका नहीं है । यद्यपि इसके टीकाकार मुनिदास भूपालने—वाक्यसुधाके रचयिता शङ्कर हैं—ऐसा स्वीकार किया है (ताञ्जोर कैटलाग, पु० सं० ७३७४), तथापि यह कथन प्रामाणिक नहीं है । टीकाकार ब्रह्मानन्द भारतीका मत है कि भारतीतीर्थ तथा विद्यारण्यने मिलकर इस ग्रन्थकी रचना की थी (द्रष्टव्य—ताञ्जोर ७३६८), परन्तु स्वयंप्रकाशके प्रशिष्य तथा हयग्रीवके शिष्य विश्वेश्वर मुनिने स्वरचित वाक्यसुधा-टीकामें लिखा है कि वाक्यसुधाका रचयिता अकेला विद्यारण्य ही है ।

५४—परमहंससन्ध्योपासन ।

५५—गायत्रीपद्धति। इसमें विश्वामित्रसंहिताका उल्लेख है।

५६—अज्ञानबोधिनी (आत्मबोधटीका)। यह पुस्तक ४ थं संख्यामें उक्त पुस्तकसे भिन्न प्रतीत होती है।

५७—त्रिपुटीप्रकरण। इसपर आनन्दज्ञानकी टीका है।

५८—दशनामाभिधान। इसका किसी-किसी अंशमें मठाम्नायसे काफी सम्बन्ध है, ऐसा ज्ञात होता है।

५९—सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रह।

६०—केरलाचारसंग्रह।

६१—सामवेदमन्त्रभाष्य।

६२—वज्रसूच्युपनिषत्सार।

६३—हरितत्त्वमुक्तावली।

६४—जीवब्रह्मैक्यस्तोत्र।

६५—मायापञ्चक।

६६—ज्ञानगङ्गाशतक।

६७—शतश्लोकी।

६८—संन्यासपद्धति।

६९—सर्वसिद्धान्तसंग्रह।

७०—नवरत्नमाला।

७१—सर्वप्रत्ययमाला।

७२—मन्त्रार्णस्तुति।

७३—मन्त्रमातृकापुष्पमाला।

७४—अवधूतषट्क।

७५—ज्ञानगीता।

७६—सिद्धान्तपञ्जर।

प्रसिद्धि है कि शङ्कराचार्यने बहुतसे स्तोत्रग्रन्थोंकी रचना की थी। वे परमार्थतः अद्वैतवादी होनेपर भी व्यवहारभूमिमें देवताओंकी उपासना तथा सार्थकता खूब मानते थे और स्वयं भी लोकशिक्षाके लिए वैसा ही आचरण करते थे। उनके विशाल हृदयमें साम्प्रदायिकताके क्षुद्रभावके लिए कोई स्थान नहीं था। इसीलिए शिव, विष्णु, शक्ति प्रभृति नाना देवताओंके और उनके

विभिन्न रूपोंके स्तोत्र उनकी रचनावलीमें दीख पड़ते हैं। अवश्य ही इनमेंसे बहुतसे स्तोत्र परवर्ती शङ्करोंके द्वारा रचे गये होंगे। परन्तु ये सब आदिशङ्करमें ही आरोपित किये गये हैं। जो लोग इस विषयका विशेषरूपसे अनुसन्धान करेंगे वे प्रतिस्तोत्रका प्रामाण्यविचारपूर्वक कालनिर्णय तथा कर्त्ताका निश्चय करनेके लिए प्रयत्न करेंगे। केवल शङ्कराचार्यके नामके साथ सम्बन्ध है, इसीलिए इन स्तोत्रोंका यहां उल्लेख किया गया है। इनमेंसे दो-एक स्तोत्रोंका नाम पूर्व सूचीमें भी आया है, इसीलिए उनकी पुनरुक्ति नहीं की गई है।

१—शिवस्तोत्र—

१—शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्र
२—शिवाष्टक
३—द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र
४—दक्षिणामूर्त्यष्टक (?)
५—शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र
६—मृत्युञ्जयमानसपूजा
७—कालभैरवाष्टक
८—शिवपादादिकेशान्तस्तोत्र
९—शिवकेशादिपादान्तस्तोत्र
१०—दक्षिणामूर्त्तिवर्णमाला
११—वेदसारशिवस्तोत्र
१२—शिवज्ञानदकारिका

२—शक्तिस्तोत्र—

१—अम्बाष्टक
२—त्रिपुरसुन्दर्यष्टक
३—ललितापञ्चरत्न
४—राजराजेश्वरीस्तोत्र
५—मीनाक्षीस्तोत्र
६—मीनाक्षीपञ्चरत्न
७—बालापञ्चरत्न
८—त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजा
९—त्रिपुरसुन्दरीवेदपाद
१०—अन्नपूर्णास्तोत्र
११—मातङ्गीस्तोत्र
१२—देवीभुजङ्गप्रयात
१३—देवीपञ्चरत्न
१४—देवीस्तुति
१५—गौरीदशक
१६—भवान्यष्टक
१७—भवानीभुजङ्गप्रयात
१८—दुर्गापराधभञ्जनस्तोत्र
१९—तारापज्झटिका
२०—गिरिजादशक
२१—कालिकास्तोत्र
२२—काल्यपराधभञ्जनस्तोत्र
२३—देवीचतुःषष्ट्युपचारपूजास्तोत्र
२४—शारदाभुजङ्गप्रयात
२५—कामाक्षीस्तोत्र
२६—श्यामामानसार्चन
२७—भ्रमराम्बाष्टक

३—*विष्णुस्तोत्र*—

१—कृष्णाष्टक [दो प्रकारका]	१२—जगन्नाथाष्टक
२—बालकृष्णाष्टक	१३—जगन्नाथस्तोत्र
३—कृष्णदिव्यस्तोत्र	१४—भगवन्मानसपूजा
४—अच्युताष्टक	१५—पाण्डुरङ्गाष्टक
५—चक्रपाणिस्तोत्र	१६—मुकुन्दचतुर्दश
६—विष्णुषट्पदी	१७—हरिनामावलीस्तोत्र
७—नारायणस्तोत्र	१८—संकटहरणस्तोत्र
८—गोविन्दाष्टक	१९—रामाष्टक
९—आर्तत्राणनारायणाष्टादश	२०—राघवाष्टक
१०—विष्णुपादादिकेशान्तस्तोत्र	२१—रामभुजङ्गप्रयात
११—हरिमीडेस्तोत्र	२२—रामतत्त्वरत्न

४—*गणेशस्तोत्र*—

१—गणेशभुजङ्गप्रयात	३—गणेशाष्टक
२—वरदगणेशस्तोत्र	४—गणेशपञ्चरत्न

५—*युगलदेवतास्तोत्र*—

१—अर्धनारीश्वरस्तोत्र	४—हरिहरस्तोत्र
२—उमामहेश्वरस्तोत्र	५—हरगौर्यष्टक
३—लक्ष्मीनृसिंहपञ्चरत्न	६—सङ्कटनाशनलक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र

६—*नदी-तीर्थविषयकस्तोत्र*—

१—गङ्गाष्टक	६—काशीपञ्चक
२—गङ्गास्तोत्र	७—पुष्कराष्टक
३—यमुनाष्टक [दो प्रकारका]	८—त्रिवेणीस्तोत्र
४—नर्मदाष्टक	९—मणिकर्णिकास्तोत्र
५—काशीस्तोत्र [विश्वनाथनगरीस्तोत्र]	

७ *साधारणस्तोत्र*—

१—सुब्रह्मण्यभुजङ्गप्रयात	४—कनकधारास्तोत्र
२—दत्तभुजङ्गप्रयात	५—कल्याणवृष्टिस्तोत्र
३—दत्तमहिम्नस्तोत्र	६—सुवर्णमालास्तोत्र

७—महापुरुषस्तोत्र
८—ब्रह्मानन्दस्तोत्र
९.—हनुमत्पञ्चक
१०—अञ्जनीस्तोत्र

श्रीशङ्कराचार्यका शिष्यवर्ग—

शङ्कराचार्य जैसे अलौकिक बुद्धिसम्पन्न थे, उनके शिष्योंमें सुरेश्वराचार्य तथा पद्मपादाचार्य भी किसी अंशमें वैसे ही बुद्धिसम्पन्न थे। हस्तामलक तथा त्रोटकाचार्यके विषयमें विशेष ज्ञातव्य बातोंको जाननेका कोई उपाय नहीं है।

सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धि, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, दक्षिणामूर्तिस्तोत्रवार्तिक अथवा मानसोल्लास, पञ्चीकरणवार्तिक, काशीमृतिमोक्षविचार आदि ग्रन्थोंका निर्माण किया था। वेदान्तशास्त्रके इतिहासमें वार्तिककारपदसे केवल सुरेश्वराचार्यका ही बोध होता है। सुरेश्वर केवल वेदान्तज्ञ ही नहीं थे, किन्तु धर्मशास्त्रमें भी उनका अगाध पाण्डित्य था। याज्ञवल्क्यस्मृतिपर 'बालक्रीडा' टीका, जो कि विश्वरूपाचार्यकी कृतिरूपसे प्रसिद्ध है, सुरेश्वराचार्यकी ही कृति है, ऐसा प्रत्नतत्त्ववित् विद्वानोंका मत है। उक्त मतके अनुसार विश्वरूप सुरेश्वराचार्यका ही नामान्तर है *। बालक्रीडाटीकाके अतिरिक्त धर्मशास्त्रमें उनके और भी दो ग्रन्थोंका परिचय मिलता है। उनमें एक श्राद्धकलिका है, जिसमें श्राद्धका विशेषरूपसे वर्णन है। दूसरा एक गद्यपद्यात्मक निबन्ध है, जिसमें आचार आदिका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया गया है। श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्यके उद्वाहतत्त्वमें जो विश्वरूप-

---

* पण्डितवर P. V. Kane ने History of Dharmashastra नामक ग्रन्थमें अनेक प्रमाणोंसे विश्वरूप और सुरेश्वरकी अभिन्नताका प्रतिपादन किया है। माधवाचार्यने पराशरस्मृतिकी टीकामें सुरेश्वरके बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकसे एक वचन इस प्रकार उद्धृत किया है—"वार्तिके विश्वरूपाचार्य उदाजहार—

'आम्रे फलार्थे' इत्यादि ह्यापस्तम्बस्मृतेर्वचः।
फलभाक्त्वं समाचष्टे नित्यानामपि कर्मणाम्॥"

विवरणप्रमेयसंग्रहमें भी बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकका एक वचन उद्धृत हुआ है। ब्रह्मानन्दभारतीने अपने पुरुषार्थप्रबोधनामक ग्रन्थमें सुरेश्वरकृत नैष्कर्म्यसिद्धिको विश्वरूपकी कृति कहा है—

"इत्येवं नैष्कर्म्यसिद्धौ ब्रह्मांशैर्ब्रह्मवित्तमैः।
श्रीमद्भिर्विश्वरूपाख्यैराचार्यैः करुणार्णवैः॥" इत्यादि।

रामतीर्थके मानसोल्लास, वृत्तान्तविलास और गुरुवंशकाव्यमें भी ऐसा ही देखा जाता है।

समुच्चयनामक एक संग्रहग्रन्थका उल्लेख मिलता है, सम्भव है कि यह निबध वही हो।

वेदान्तशास्त्रके इतिहासमें प्रसिद्धि है कि सुरेश्वरका गृहस्थाश्रमावस्थाका नाम मण्डनमिश्र था। यह भी प्रसिद्धि है कि सुरेश्वर पहले कुमारिलके शिष्य और कर्मवादी मीमांसक थे। श्रीशङ्कराचार्यके संसर्गमें आकर और बादमें पराजित होकर श्रीशङ्कराचार्यके शिष्य बन गये। उनका संन्यासाश्रमका नाम सुरेश्वर पड़ा। इस मतके अनुसार मण्डनके नामसे जितने ग्रन्थोंका प्रचार है वे सभी सुरेश्वर द्वारा गृहस्थाश्रमावस्थामें रचे गये हैं। मण्डन और सुरेश्वरका यह अभेदवाद शङ्करदिग्विजयके आधारपर है। इसी कारण इतने दिनोंतक पण्डित समाजमें यह बात प्रामाणिक मानी जाती थी, परन्तु आजकल नवीन पण्डितोंने विशेषरूपसे पर्यालोचन कर यह प्रायः सिद्ध कर दिया है कि मण्डन और सुरेश्वर एक ही व्यक्ति नहीं हैं। ये दो पृथक् व्यक्ति थे और इनका समय भी एक नहीं है। मण्डन प्राचीन थे और सुरेश्वर अर्वाचीन। अत एव दोनोंके विषयमें अभेदोक्ति सर्वथा निर्मूल है।

मण्डनने ब्रह्मसिद्धि* नामक एक उच्चकोटिका वेदान्त ग्रन्थ बनाया था। यद्यपि यह ग्रन्थ अद्वैतसिद्धान्तका ही प्रतिपादक है, तथापि यह अद्वैतवाद नैष्कर्म्यसिद्धि तथा उपनिषद्भाष्यवार्तिकोंमें सुरेश्वराचार्यसे प्रतिपादित अद्वैतवादसे सर्वथा भिन्न है। माध्वसम्प्रदायके मणिमञ्जरीनामक ग्रन्थके अनुसार भी मण्डन और सुरेश्वर पृथक् व्यक्ति प्रतीत होते हैं। मण्डन सुरेश्वरसे प्राचीन थे इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु वे शङ्करके समकालीन थे अथवा शङ्करसे भी प्राचीन थे इसका निर्णय करना कठिन है। यह प्रसिद्धि है कि मण्डन कुमारिलके शिष्य थे †। परन्तु सुरेश्वर साक्षात् अथवा परम्परासे कुमारिलके

---

* ब्रह्मसिद्धिके ऊपर वाचस्पति मिश्रने ब्रह्मतत्त्वसमीक्षानामक एक टीका लिखी थी। परन्तु यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई। भामतीमें इसका उल्लेख है। ब्रह्मसिद्धि उपलब्ध हो गई है और शीघ्र ही मद्राससे उसके प्रकाशित होने की आशा है। मण्डनमिश्रका अद्वैत-वाद भर्तृहरिके अद्वैतवादके अनुरूप है। यह एक प्रकारसे शब्दब्रह्माद्वयवादका ही भेद है। मण्डन स्फोटवादी थे और स्फोटको सिद्ध करनेके लिए स्फोटसिद्धिनामक एक ग्रन्थ भी उन्होंने बनाया था। परन्तु शङ्कराचार्यने शारीरकभाष्यमें स्फोटका विशेषरूपसे खण्डन किया है।

† आनन्दगिरिके मतसे मण्डनमिश्र कुमारिलके भगिनीपति (बहनोई) थे, परन्तु यह कथन विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः मण्डन कुमारिलके शिष्य थे या नहीं, यह भी

शिष्य थे यह प्रतीत नहीं होता। उन्होंने तैत्तिरीयवार्तिक (१—९, १०) में कुमारिलके श्लोकवार्तिककी 'मोक्षार्थी न प्रवर्तेत'—इत्यादि कारिकाको (सम्बन्धाक्षेपपरिहार १०) उद्धृत कर कुमारिलको 'मीमांसकम्मन्य' कहा है। शिष्यकी गुरुके विषयमें इस प्रकार आक्षेपपूर्ण उक्ति सम्भव नहीं है। विधिविवेक, भावनाविवेक, विभ्रमविवेक, मीमांसानुक्रमणी और स्फोटसिद्धि ये सब ग्रन्थ मण्डनमिश्रकृत हैं। इनमें विधिविवेकके ऊपर वाचस्पतिमिश्रने * न्यायकणिका नामकी टीका लिखी है। भावनाविवेकपर उम्बेकाचार्यकी † टीका

विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो श्लोकवार्तिकके टीकाकार उम्बेकाचार्य, जो कि स्वयं कुमारिलके शिष्य थे, अपने सतीर्थ्य मण्डनमिश्रके ग्रन्थ—भावनाविवेकपर टीका न लिखते। भावनाविवेकमें कुमारिलके मतका खण्डन भी किया गया है। कुमारिलने श्लोकवार्तिकमें जिस स्फोटवादका खण्डन किया है, मण्डनमिश्रने स्फोटसिद्धि नामक अपने ग्रन्थमें उसीका विशेषरूपसे मण्डन किया है।

* वाचस्पतिमिश्रने मण्डनके एक मीमांसा-ग्रन्थपर और एक वेदान्त-ग्रन्थपर टीका लिखी थी। वाचस्पतिमिश्र मण्डनमिश्रके भक्त थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किसी-किसी पण्डितका यह विश्वास है कि वाचस्पतिमिश्रने भामतीपर बहुत स्थलोंमें मण्डनमिश्रके सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए व्याख्या की है। उनकी व्याख्या सर्वत्र ठीक ठीक शङ्करके मतके अनुकूल भी नहीं है। शङ्करवेदान्तका भामतीप्रस्थान कितने अंशोंमें मण्डनमिश्रके मतके अनुकूल है, इसकी आलोचनाका यह अवसर नहीं है। परन्तु प्रतिद्वन्द्वी विवरणप्रस्थानकी सत्तासे प्रतीत होता है कि पद्मपादाचार्यकी धारासे अथवा वार्तिककी सरणिसे भिन्नरूपमें चलनेका कोई कारण होना चाहिए। मण्डनके सिद्धान्तके प्रति विशेष अनुराग ही इसका कारण प्रतीत होता है।

† उम्बेकाचार्यकृतटीकासमेत भावनाविवेक बनारससंस्कृतकालेज सरस्वतीभवनसंस्कृतग्रन्थमालासे प्रकाशित हो चुका है। प्रसिद्धि है कि उम्बेक कुमारिलके शिष्य थे। उन्होंने श्लोकवार्तिकपर एक टीका लिखी थी, जिसक उल्लेख शास्त्रदीपिकाकी रामकृष्णकृत युक्तिस्नेहप्रपूरणी व्याख्यामें है। शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें श्लोकवार्तिकटीकाकाररूपसे जिस उवेयकका उल्लेख किया है, वे वस्तुतः ये ही उम्बेकाचार्य हैं। इनका नाम विभिन्न ग्रन्थोंमें कहीं उवेक, उवेयक, उम्बेक इस तरह नाना प्रकारका उपलब्ध होता है। कमलशीलने भी अपनी पञ्जिकामें उम्बेकका वचन उद्धृत किया है। सम्पूर्ण श्लोकवार्तिककी टीका उम्बेकने अकेले ही बनाई थी या जयमिश्रकी सहायतासे बनाई थी, इसका निर्णय करना कठिन है, किन्तु अधिकांश स्थलोंमें यह उम्बेकके नामसे ही अधिक प्रसिद्ध है। चित्सुखाचार्यकृत तत्त्वप्रदीपिकाकी नयनप्रसादिनी टीकामें (पृ० २६५) टीकाकार प्रत्यक्स्वरूपाचार्यने उम्बेक भवभूतिका नामान्तर है, ऐसा निर्देश किया है। भवभूति कुमारिलके शिष्य थे, यह भी किसी-किसीका मत है। मालतीमाधवकी एक हस्तलिखित प्रतिसे ज्ञात हुआ है कि यह नाटक

मिलती है। स्फोटसिद्धिपर गोपालिकाटीका प्रकाशित हुई है। मीमांसानुक्रमणिकापर म० म० गङ्गानाथझाकी नवीन टीका प्रकाशित हुई है।

सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें तीन प्रकारके समुच्चयवादका उल्लेख करके खण्डन किया है। इनमेंसे प्रथम मत ब्रह्मदत्तका है (यह बात नैष्कर्म्यसिद्धिकी विद्यासुरभिटीकामें, १।६७, कही गई है। आनन्दज्ञानने सम्बन्धवार्तिकमें, ७९७, इसका समर्थन किया है), द्वितीय मत मण्डनमिश्रका है (सुरेश्वरने वार्तिकमें, ४।४।७८६–८१०, इस मतका खण्डन किया है। आनन्दज्ञानकी टीकासे ज्ञात होता है कि यह मण्डनका मत है) और तृतीयमत भर्तृप्रपञ्चका है। ब्रह्मदत्त कहते हैं कि अज्ञाननिवृत्ति भावनाजन्य साक्षात्कारात्मक ज्ञानसे होती है, वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानसे नहीं होती। वेदान्तवाक्यश्रवण करनेपर 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् दीर्घकाल तक उपासना करनी पड़ती है। इस प्रकार भावनाके उत्कर्षसे अपरोक्ष ज्ञान आविर्भूत होता है, जिससे अज्ञान पूर्णतया निवृत्त हो जाता है। ब्रह्मदत्तका कथन है कि इसी कारण ज्ञानाभ्यासके समय कर्मके साथ ज्ञानका समुच्चय असंगत नहीं है। 'देवो भूत्वा देवानप्येति' यह श्रुति ही इसमें प्रमाण है। इसका आशय यह है कि भावनाके उपचयसे देवभावका साक्षात्कार होता है, उसके पश्चात् देहपातके अनन्तर उपास्य देवभावकी प्राप्ति

कुमारिलशिष्य उम्बेकाचार्यसे रचा गया था—"इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभवश्रीमदुम्बेकाचार्यविरचितमालतीमाधवे षष्ठोऽयमङ्कः" (द्रष्टव्य—Introduction to Gaudavaho, note No. 4, Page 206). उम्बेककृत श्लोकवार्तिकटीकाके आरम्भमें मालतीमाधवका—'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्' यह श्लोक देख पड़ता है। पं० V. A. Ramswami Shastri ने स्वसम्पादित तत्वबिन्दुकी भूमिकामें उम्बेक और भवभूतिकी अभिन्नताके विषयमें कुछ सन्देह प्रकट किया है। वे कहते हैं कि भवभूतिने अपने नाटकमें ज्ञाननिधिको अपना गुरु बतलाया है। वह कुमारिलका ही नामान्तर है, इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है। पक्षान्तरमें उम्बेक भी सत्य ही कुमारिलके शिष्य थे या नहीं, यह भी निश्चित नहीं है; क्योंकि उन्होंने श्लोकवार्तिककी टीकामें वार्तिक तथा भाष्य दोनोंमें दोष दिखलाया है और प्राचीन आर्षवचनकी प्रतिध्वनिरूपमें कहा है—'गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥' कुमारिल उनके गुरु थे इससे यह सिद्ध नहीं होता, इससे इतना ही प्रकाशित होता है कि वे उम्बेक के गुरुस्थानीय थे। तथापि उनके मतमें दोष देखकर बिना संकोच उन्होंने उसका खण्डन करनेका प्रयत्न किया था।

होती है। ब्रह्मदत्तके मतमें कर्मकाण्डके सदृश उपनिषत् भी विधिप्रधान है, परन्तु यह विधि कर्मविधि नहीं है, उपासनाविधि है। उपासनाका नामान्तर भावना अथवा प्रसंख्यान है। 'आत्मेत्युपासीत' इत्याकारक उपासनाविधिमें ही उपनिषद् वाक्योंका तात्पर्य है। 'तत्त्वमसि' इत्याकारक वाक्य मुख्य नहीं हैं, क्योंकि इनसे उपासनाका विषयनिर्देशमात्र होता है। इसीलिए वेदान्तवाक्यजनित ज्ञानसे मोक्ष नहीं होता, किन्तु प्रसंख्यानकी आवश्यकता होती है। जब तक अविद्यानिवृत्ति अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार न हो जाय, तब तक कर्म आवश्यक है—यह ब्रह्मदत्त और शङ्कर दोनों ही मानते हैं, परन्तु शङ्कर कहते हैं कि 'तत्त्वमसि' इत्यादि वेदान्त-वाक्यजन्य ज्ञानसे उत्तम अधिकारी पुरुष अविलम्ब ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकते हैं, किन्तु ब्रह्मदत्तके मतमें उस ज्ञानके पश्चात् उपासना अथवा ध्यानकी आवश्यकता होती है। अत एव औपनिषद ज्ञान और मुक्तिप्राप्तिके मध्यमें वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान अपेक्षित है। इसीलिए वे ज्ञानके साथ कर्मका समुच्चय मानते हैं।

मण्डनके मतमें भी क्रिया अथवा उपासनामें ही उपनिषद्वाक्योंका तात्पर्य है। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य विधिवाक्यके अधीन हैं। उनका भी यही कहना है कि श्रावण ज्ञानके अनन्तर उपासना अथवा ध्यान आवश्यक है, क्योंकि वेदान्तवाक्यसे जो 'अहं ब्रह्म' इत्याकारक ज्ञान उत्पन्न होता है, वह संसर्गात्मक है, अतः उससे आत्माके स्वरूपकी ठीक-ठीक प्रतिपत्ति नहीं होती। निरन्तर इसका अभ्यास करनेसे एक पृथक् ज्ञान उत्पन्न होता है, जो वाक्यार्थरूप नहीं है; उसीसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है। 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः' यह श्रुति ही इसमें प्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है—विज्ञानके अनन्तर, अर्थात् संसृष्टरूप ब्रह्मको जानकर, प्रज्ञाका साधन करना चाहिए अर्थात् साक्षात्कारात्मक अथवा असंसर्गात्मक ज्ञानका निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। इसीलिए समुच्चयकी आवश्यकता होती है। मण्डनके मतसे लौकिक अथवा वैदिक सब प्रकारके वाक्योंसे ही संसर्गात्मक वाक्यार्थ-बोध होता है। इसीलिए तत्त्वमस्यादि वाक्योंसे 'अहं ब्रह्म' इत्याकारक संसर्गात्मक ज्ञान पहले उत्पन्न होता है। इसके अनन्तर प्रत्यगात्मविषयक 'अहं ब्रह्म' इत्याकारक अवाक्यार्थरूप ज्ञान जब तक आविर्भूत न हो, तब तक निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिये। इस ज्ञानसे ही कैवल्यका आविर्भाव होता है। मण्डनका कहना है कि जब संसर्गबुद्धिको उत्पन्न करना ही शब्दका

स्वभाव है, तब उससे अवाक्यार्थप्रतिपत्तिकी क्या आशा हो सकती है। इसीलिए शाब्दज्ञानका अभ्यास अपेक्षित है। इसीसे तृतीय ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे अवाक्यार्थप्रतिपत्ति हो सकती है।

भर्तृप्रपञ्चके मतमें भी समुच्चय आवश्यक है। ये भेदाभेदवादी या अनेकान्तवादी थे। इनके मतमें भेद और अभेद दोनों ही सत्य हैं। भेदके सत्य होनेके कारण कर्म सदा अपेक्षित है और अभेद के सत्य होनेके कारण उसकी उपलब्धिके लिए ज्ञानकी अपेक्षा है। मुक्त तथा मुमुक्षु सबको ज्ञान तथा कर्मके समुच्चयकी आवश्यकता होती है। अभेद न माननेसे 'अहं ब्रह्मास्मि' यह ज्ञान उपपन्न नहीं हो सकता। इसीलिए ब्रह्म उनके मतमें भिन्नाभिन्नात्मक है।

सुरेश्वरने तीनों मतोंका खण्डन करके शङ्करका मतस्थापन किया है। उन्होंने दिखलाया है कि प्रसंख्यान, उपासना अथवा ध्यानकी आवश्यकता शङ्कर भी मानते हैं। लेकिन शङ्करका कथन यह है कि एकमात्र उपनिषद्वाक्यसे ही साक्षात्रूपमें ब्रह्मस्वरूपका परिज्ञान होता है, उसके लिए ध्यानकी अपेक्षा नहीं है। वाक्यसे संसृष्टका ज्ञान होता है या असंसृष्टका? परोक्ष ज्ञान होता है या अपरोक्ष? इसका निश्चय प्रमेयके अधीन है। असंसृष्ट ब्रह्म वस्तुतः प्रत्यगात्मासे अभिन्न होनेके कारण 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंसे अपरोक्ष ज्ञान होनेमें कोई बाधक नहीं है। अत एव वेदान्तज्ञानके लिए प्रसंख्यानकी सहकारिता अपेक्षित नहीं है। किन्तु निम्न अधिकारीके लिए प्रसंख्यानके द्वारा अधिकाररूप बलकी वृद्धि होती है, जिससे महावाक्योंके यथार्थ अर्थको जाननेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है। प्रसंख्यानसे प्रतिबन्धकी निवृत्ति होती है। प्रतिबन्धके अभावमें इन्द्रिय अथवा शब्दात्मक प्रमाण निरपेक्ष होकर ही प्रमेयको प्रकाशित करता है। जिसमें यह शक्ति नहीं है, वह वस्तुतः प्रमाण ही नहीं है। अत एव प्रसंख्यान अथवा निदिध्यासन आत्मज्ञानका परवर्ती नहीं है, किन्तु पूर्ववर्ती है।

पूर्वोक्त संक्षिप्त आलोचनासे प्रतीत होगा कि मण्डन और सुरेश्वर अभिन्न व्यक्ति नहीं हैं और इन लोगोंका सिद्धान्त भी परस्पर विभिन्न है। आनुषङ्गिक भावसे मण्डनकी दृष्टिसे शङ्करसम्प्रदायकी दृष्टिका वैलक्षण्य भी इससे ज्ञात होगा।

मठाम्नायके अनुसार सुरेश्वराचार्य द्वारकामठके प्रथम अधिष्ठाता थे, परन्तु इस विषयमें बहुत अधिक मतभेद है।

पद्मपादाचार्यका यथार्थ नाम सनन्दन था। उन्होंने शारीरकभाष्यके प्रथमांशकी पञ्चपादिका नामसे प्रसिद्ध व्याख्या करके उसका प्रचार किया था। प्रकाशात्मयतिने उसपर पञ्चपादिकाविवरण नामक व्याख्या लिखी थी। पञ्चपादिकाविवरणपर माधवाचार्यका विवरणप्रमेयसंग्रह तथा अखण्डानन्दका तत्त्वदीपन प्रसिद्ध व्याख्यान-ग्रन्थ हैं। वेदान्तके विवरणप्रस्थानका मूल आधार पञ्चपादिका ही है। मठाम्नायके अनुसार पद्मपादाचार्य पुरीस्थ गोवर्द्धन-मठके प्रथम अधिष्ठाता थे *।

त्रोटकाचार्य अथवा तोटकाचार्यका प्रसिद्ध नाम आनन्दगिरि था† । परन्तु यह कहांतक विश्वसनीय है यह कहना कठिन है, लेकिन इतना निश्चित है कि टीकाकार आनन्दगिरि तोटकाचार्यसे बहुत अर्वाचीन थे। तोटकने कौन-कौन ग्रन्थ बनाये इसका ठीक-ठीक पता नहीं है। प्रतीत होता है कि उन्होंने कोई बृहद् ग्रन्थ नहीं बनाया था ‡।

हस्तामलकका दूसरा नाम पृथ्वीधराचार्य था। हस्तामलकके नामसे सम्बद्ध

---

* पद्मपादाचार्य काश्यपगोत्रीय ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। मठाम्नायमें लिखा है—

गोवर्द्धनमठे रम्ये विमलापीठसंज्ञके।
पूर्वाम्नाये भोगवारे श्रीमत्काश्यपगोत्रजः॥
माधवस्य सुतः श्रीमान् सनन्दन इति श्रुतः।
प्रकाशब्रह्मचारी च ऋग्वेदी सर्वशास्त्रवित्॥
श्रीपद्मपादः प्रथमाचार्यत्वेनाभ्यषिच्यत।

श्रीपद्मपादाचार्यने विज्ञानदीपिका नामक एक ग्रन्थ और बनाया था ऐसा किसी किसी विद्वान्‌का मत है। यह ग्रन्थ नेपालराज्यके ग्रन्थागारमें सुरक्षित है। इसमें विशेषरूपसे कर्मका विचार तथा कर्मनिवृत्तिके उपायका आलोचन किया गया है। इस ग्रन्थके आधारपर डा० उमेशमिश्रने The Annihilation of Karman नामसे एक लेख लिखा था, जो सप्तमवर्षके Oriental Conference नामक अधिवेशनमें पढ़ा गया था। (द्रष्टव्य Proceedings of Seventh Oriental Conference, pp. 457-480.)

† मठाम्नायमें लिखा है—'तोटकं चानन्दगिरिं प्रणमामि जगद्गुरुम्'।

‡ Aufrecht के Catalogus Catalogorum में तोटकके नामके साथ काल-निर्णय, तोटक-व्याख्या, तोटकश्लोक, श्रुतिसारसमुद्धरण आदिका उल्लेख मिलता है।

हस्तामलकस्तोत्र नामका एक द्वादशश्लोकात्मक स्तोत्र प्रसिद्ध है। उसके ऊपर आचार्य शङ्करका भाष्य मिलता है*। किन्तु इसकी प्रामाणिकतामें सन्देह होता है। यह भी हो सकता है कि स्तोत्र शङ्कराचार्यका बनाया हो और उसपर हस्तामलकने भाष्य रचा हो अथवा दोनों ही शङ्करके ही हों†। इसपर वेदान्तसिद्धान्तदीपिका नामसे प्रसिद्ध एक टीका है (द्रष्टव्य Cat. Cat., Vol. I, p. 765). मठाम्नायके अनुसार हस्तामलकाचार्य शृङ्गेरीमठके प्रथम मठाधीश थे, किन्तु यह मत भी निर्विवाद नहीं है।

श्रीशङ्कराचार्यका मतस्थापन और धर्मप्रचार।

प्राचीन समयसे ही ऐसी प्रसिद्धि है कि बौद्ध आदि अवैदिक धर्मके प्रचार तथा तदनुसारी दर्शनोंके प्राबल्यसे जिस समय भारतीय वर्णाश्रमधर्ममें विप्लव उपस्थित हो रहा था, उस समय भट्टकुमारिल, मण्डनमिश्र, श्रीशङ्कराचार्य आदि महापुरुषोंने विरुद्धमतका निरसन करते हुए वैदिक मतकी पुनः स्थापना की थी। किसी-किसीका मत है कि इन्हींके पराक्रमसे बौद्ध धर्म भारतसे निर्वासित होकर लुप्तप्राय हो गया‡। इस मतके सम्पूर्णतया तथ्य न होनेपर भी इसमें

---

* जीवानन्द विद्यासागरने १८७५ ई० में सुबोधिनी टीका सहित वेदान्तसारके परिशिष्ट रूपमें (पृ० ४९-६०) इसको प्रकाशित किया था।

† यह भी असम्भव नहीं है कि इस स्तोत्रका हस्तामलक यह नाम शङ्कराचार्यके शिष्यसे सम्बद्ध ही न हो।

‡ बौद्धधर्म भारतवर्षसे निकाला नहीं गया था, किन्तु रूपान्तरमें परिणत होकर यहीं विद्यमान रहा। यवनोंके अत्याचारसे बौद्ध भिक्षु लोग विभिन्न विहारोंसे शास्त्रीय ग्रन्थ आदि साथ लेकर नेपाल, तिब्बत आदि देशोंमें चले गये थे—यह दूसरी बात है। म० म० हरप्रसादशास्त्री, प्राच्यविद्यामहार्णव नगेन्द्रनाथवसु आदि पण्डितोंने इस विषयमें बहुत आलोचना की है (द्रष्टव्य—H. P. Shastri, Discovery of Living Buddhism in Bengal; N. Basu, Modern Buddhism in Orissa)। परन्तु कुमारिल, शङ्कर, उदयन प्रभृति आचार्योंके ग्रन्थनिर्माणके प्रभावसे बौद्ध पण्डितसमाज बहुत अंशोंमें कमजोर हो गया था। बौद्धधर्मकी अवनतिके वास्तविक कारण ये हैं—

(१) बौद्धसंघका संगठन और प्रबन्ध खराब हो गया था।

(२) भिन्न-भिन्न समयमें बहुत अयोग्य लोग बौद्धधर्ममें प्रविष्ट हो गये थे। इन लोगोंकी न बुद्धमें श्रद्धा थी और न धर्ममें आस्था। बहुत-से लोग केवल अपनी वृत्तिके लिए या रोगसे मुक्त होनेके लिए अथवा कठिन कर्तव्योंके भारसे मुक्त होनेके लिए बौद्ध धर्मकी शरण लेते थे।

सन्देह नहीं है कि आचार्य शङ्करके ही प्रभाव तथा प्रयत्नसे वैदिकधर्मकी पुनः प्रतिष्ठा हुई थी। उनके ब्रह्मचर्य, विद्या, धी, प्रतिभा, तथा तपश्चर्याका बल समस्त

इस प्रकारके कृत्रिम लिङ्गधारी लोगोंके संसर्गसे बौद्ध विहारका नैतिक उच्च आदर्श नष्ट हो गया था। नैतिक बलका ह्रास होनेसे जनताके ऊपर उनका प्रभाव अपने आप कम होता गया।

(३) कालक्रमसे योग्य पुरुषोंकी न्यूनता होनेके कारण बौद्धधर्मका आध्यात्मिक उद्देश्य और महत्त्व लोग भूल गये थे। क्रमशः भिन्न-भिन्न संघ परस्पर सम्बन्धहीन होकर विश्लिष्ट हो गये थे। ठीक-ठीक अनुष्ठान न होनेके कारण, बुद्धके उपदेशका तात्पर्य क्या है, इसमें भी लोगोंको सन्देह होने लगा था; क्योंकि उक्त उपदेशका पालन करनेवाले बहुत कम लोग रह गये थे।

(४) यद्यपि विदेशीय राजा बौद्धधर्मको उत्साहित करते थे, तथापि वे लोग स्वयं उसमें पूर्णरूपसे विश्वास नहीं रख सकते थे; क्योंकि ये सब राजा बौद्धधर्मग्रहण करनेपर भी अपने पूर्व धर्मका पालन करनेका पूर्ण प्रयत्न करते थे। इससे भी बौद्धधर्मकी हानि हुई थी। जैसे कि ग्रीक Menander (मिलिन्द), कुशनराज कनिष्क आदिके उद्यमसे यद्यपि भारतीय यवन अथवा कुशन लोग बौद्धधर्मग्रहण करते थे, तथापि उनकी ग्रीकप्रकृति नहीं छूटती थी। धीरे धीरे इस प्रकृतिकी प्रबलतासे बौद्धसमाजके ऊपर भी विदेशीय-भावका कुछ-कुछ प्रभाव पड़ा था। यद्यपि कनिष्क बौद्ध हुए थे, तथापि वे इरानीय धर्मका पालन भी साथ-साथ करते थे। वे ग्रीक, भारतीय और बौद्ध देवताओं पर समान आदर रखते थे।

(५) बौद्धधर्ममें ईश्वरका अभाव। ईश्वरकी सत्ता न माननेके कारण जनतामें उसका आकर्षण धीरे-धीरे कम हो गया था।

(६) तान्त्रिक उपासनाके बहानेसे तान्त्रिक बौद्ध लोग इतना अनाचार करते थे और इतने दुर्नीतिपरायण हो गये थे कि जनसमाजमें उन लोगोंका बहुत बदनाम हो गया था। यद्यपि ये सब अनाचार वैयक्तिक दोषके भीतर ही परिगणनीय हैं, तथापि साधारण लोग इन सबका बौद्धधर्मके ऊपर आरोप करते थे। बौद्धधर्मसे समाजकी श्रद्धाके शिथिल हो जानेका यह भी एक कारण है।

इन सब आभ्यन्तर कारणोंसे धर्मका मूल सर्वथा शिथिल हो गया था। पक्षान्तरमें शङ्कर, और कुमारिल जैसे महापुरुषोंके पवित्र जीवन और उन्नत आध्यात्मिक उपदेशसे लोगोंका चित्त सहजमें ही उन लोगोंकी ओर विशेषरूपसे आकृष्ट हो गया था। यदि बौद्धोंका प्राचीन आदर्श नष्ट न होता, तो केवल धर्मप्रचारकोंके ग्रन्थनिर्माण अथवा उपदेशप्रचारका उनपर उतना प्रभाव न पड़ता। क्योंकि यदि भीतर दोषसञ्चय न होता, तो इस प्रकारके आगन्तुक कारणोंसे सैकड़ों वर्षोंसे बद्धमूल धर्मका ऐसा परिणाम न होता।

शङ्करदिग्विजयमें लिखा है कि बौद्धोंके ऊपर ब्राह्मणसम्प्रदायने अत्याचार किया था। राजा सुधन्वाके अत्याचारकी बात प्रसिद्ध ही है। इसका कुछ ऐतिहासिक मूल है या नहीं, यह कहना कठिन है। यह सत्य हो या न हो कोई राजा अत्याचारी रहा, इसमें कोई संशय नहीं है। हिन्दू राजा पुष्यमित्रके अत्याचारका विवरण दिव्यावदानमें है। हूण राजा मिहिर-

देशको अवनत मस्तकसे मानना पड़ा था। यद्यपि वैष्णव, शैव, शाक्त, तान्त्रिक आदि सभी सम्प्रदाय उनके द्वारा प्रचारित अद्वैतसिद्धान्तके विरोधमें सैकड़ों वर्षोंसे घोरतर विरोध करते आ रहे हैं, तथापि यह निश्चित है कि इससे उनका प्रताप तथा प्रभाव क्षुण्ण नहीं हुआ। शङ्कराचार्य जिस समय प्रादुर्भूत हुए थे उस समयकी देशकी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान न होनेसे उनके कार्यों तथा महत्ताका अनुभव नहीं किया जा सकता।

शङ्कराचार्यने शास्त्रीय विचारसे विभिन्न मतावलम्बी सब विपक्षियोंको पराजित किया था। जो सब पुण्यक्षेत्र उस समय विधर्मियोंके अधीन हुए थे उन्होंने यथाशक्ति उनका उद्धार किया था। स्वयं ग्रन्थ आदिकी रचनाकर तथा शिष्यों द्वारा ग्रन्थोंकी रचना कराकर शास्त्रोंके सिद्धान्तकी यथार्थ व्याख्या करते हुए आचार्य शङ्करने वैदिकधर्म तथा उपनिषदादिके निगूढ़ रहस्यको समझनेके लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया था। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध कर दिया था जिससे समग्र देशकी जनता उनके द्वारा प्रचारित धर्मका मर्म ग्रहण कर सके। यदि श्रीविद्यार्णवका मत सत्य मान लिया जाय तब मानना होगा कि उन्होंने जैसा एक ओर गृहत्यागी संन्यासियोंके लिए शुद्धज्ञान-मार्गका उपदेश दिया था वैसे ही पक्षान्तरमें गृहस्थोंके लिए उपासनामार्ग भी प्रकाशित किया था। प्राचीन समयमें बौद्धसमाजमें भी प्रायः ऐसी ही व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने भी बौद्धोंके समान संन्यासियोंको संघबद्ध करनेकी चेष्टा की थी और भारतके चार कोनोंमें चार धामोंकी स्थापना की थी। इनमें ज्योतिर्मठ—जोशीमठ—बदरिकाश्रमके सन्निकट है, शारदामठ द्वारकाधाम-में, शृङ्गेरीमठ रामेश्वरक्षेत्रमें और गोवर्द्धनमठ पुरुषोत्तमक्षेत्रमें विद्यमान है। आचार्यने इन सब मठोंमें त्रोटकाचार्य, हस्तामलकाचार्य, सुरेश्वराचार्य तथा पद्मपादाचार्य इन चार शिष्योंको अपने प्रतिनिधिरूपमें स्थापित किया

गुल ब्राह्मणोंके पक्षपाती थे। ये शैव थे। श्रीनगरमें मिहिरेश्वर नामक शिवजीकी इन्होंने स्थापना की थी (राजतरङ्गिणी)। प्रसिद्धि है कि इन्होंने भी बौद्धोंके ऊपर अति अत्याचार किया था। कर्णसुवर्णके राजा शशाङ्कका वर्णन भी प्रायः ऐसा ही मिलता है। ये हर्षवर्द्धनके समकालीन और विरोधी थे। सम्भवतः ये शैव थे—यह सब सच हो सकता है अथवा नहीं भी हो सकता, परन्तु यह विश्वास होग्य नहीं है कि २।४ व्यक्तियोंके अत्याचारके कारण किसी दृढमूल धर्मका देशसे उच्छेद हो जाय। अत एव बौद्धधर्मकी भीतरी अवनति ही इस परिणामका प्रधान कारण है।

था। कुरु, काश्मीर, कम्बोज, पाञ्चाल आदि देश अर्थात् भारतवर्षके उत्तर तथा पश्चिमका अधिकांश भूभाग बदरीधामस्थ ज्योतिर्मठके शासनाधीन हुआ, उसी प्रकार सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र प्रभृति देश अर्थात् भारतवर्षका पश्चिम भूभाग शारदामठके शासनाधीन हुआ, आन्ध्र, द्राविड, कर्णाट, केरल प्रभृति देश अर्थात् भारतका दक्षिण भूभाग शृङ्गेरीमठके शासनाधीन हुआ एवं अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मगध, उत्कल तथा बर्वर देश अर्थात् भारतवर्षका पूर्व भूभाग गोवर्द्धनमठके शासनाधीन हुआ। इस प्रकारकी व्यवस्थाका उद्देश्य यह था कि आचार्य शङ्करके निर्वाणके अनन्तर भी समग्र देशमें वर्णाश्रम-धर्म वेदान्तके दृढ़ आश्रयमें सुरक्षित रहकर तत्-तत् मठके अनुकूल स्थिर रहे। प्रत्येक मठका कार्यक्षेत्र पृथक्-पृथक् था। प्रत्येक मठाधिकारीका यह मुख्य कर्तव्य था कि अपने मठके अधीन देशोंके वर्णाश्रमधर्मियोंको धर्मोप-देश करना तथा स्वधर्ममें प्रतिष्ठित रखना। इन मठोंके अध्यक्ष शङ्कराचार्यके प्रतिनिधि होनेके कारण शङ्कराचार्य कहलाते हैं।

इसी प्रकार मठस्थापनके विषयमें भी सर्वत्र ऐकमत्य नहीं दीख पड़ता। पुरीस्थ गोवर्द्धनमठसे प्रकाशित मठाम्नायमें चार मठोंका जैसा परिचय मिलता है, उसके अनुसार यहांपर मठोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। किन्तु व्यासा-चलीय तथा केरलीय शङ्करविजय आदिमें लिखा है कि आचार्य शङ्करने अन्यान्य स्थलोंमें मठस्थापन करनेके पहले निम्बुदेरी ब्राह्मणोंके संस्कारके लिए अपने जन्मदेशमें मठस्थापना की थी। उसके पश्चात् शृङ्गेरी आदि चार स्थानोंमें तथा काशीधाममें शङ्कराचार्यने मठोंकी स्थापना की। काशीस्थित मठमें आचार्य शङ्करने महेश्वर नामक अपने शिष्यको मठाधीश नियुक्त किया था। अपने रहनेके लिए आचार्य शङ्करने काञ्चीकामकोटिपीठमें ही स्थान बनाया था। प्रसिद्धि है कि काञ्चीमें कामाक्षी देवीके मन्दिरमें जहांपर आचार्य शङ्करजीकी पाषाणमयी मूर्ति है, उसी स्थानमें उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी *।

[४९ वें पेजकी टिप्पणी]

* पाठकोंके सौकर्यके लिए मठाम्नायके आधारपर एक तालिका दी जा रही है, इससे सभी विषय स्पष्टरूपसे प्रतीत हो जायँगे।

क्रम-संख्या	मठ	आम्नाय	सम्प्रदाय	पद	क्षेत्र	देव	देवी	आचार्य	तीर्थ	ब्रह्मचारी	वेद	महावाक्य	गोत्र	शासनाधीन (आयत्त) देशोंके नाम
१	गोवर्द्धन	पूर्व	भोगवार	अरण्य, वन	पुरुषोत्तम	जगन्नाथ	विमला	पद्मपाद	महोदधि	प्रकाश	ऋक्	प्रज्ञानं ब्रह्म	काश्यप	अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, उत्कल, बर्बर, आदि
२	शृङ्गेरी	दक्षिण	भूरिवार	सरस्वती, भारती, पुरी	रामेश्वर	आदि वराह	कामाक्षी	पृथ्वीधर (हस्तामलक)	तुङ्गभद्रा	चैतन्य	यजुः	अहं ब्रह्मास्मि	भूर्भुवः	आन्ध्र द्रविड़, केरल, कर्णाट आदि
३	शारदा	पश्चिम	कीटवार	तीर्थ, आश्रम	द्वारका	सिद्धेश्वर	भद्रकाली	विश्वरूप	गोमती	स्वरूप	साम	तत्त्वमसि	अविगत	सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि
४	ज्योतिः (श्रीमठ)	उत्तर	आनन्दवार	गिरि, पर्वत, सागर	बदरिकाश्रम	नारायण	पूर्णागिरि	त्रोटक	अलकनन्दा	आनन्द	अथर्व	अयमात्मा ब्रह्म	भृगु	कुरु, काश्मीर, पाञ्चाल, कम्बोज आदि

मतान्तरमें गोवर्द्धन मठमें हस्तमलक को, शृङ्गेरीमठमें पृथ्वीधर को, द्वारका मठमें पद्मपाद को तथा ज्योतिर्मठमें त्रोटक को शङ्करने मठाधिपति बनाया था और काशीस्थ सुमेरु मठमें, जो ऊर्ध्वाम्नायके अन्तर्गत है, महेश्वर को मठाधिपति नियुक्त किया था।

आदि शङ्कराचार्यसे दिया गया पच्चीस श्लोकोंका एक महानुशासन सम्प्रदायमें प्रसिद्ध है। उक्त महानुशासनमें मठसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक उपदेश हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मठके आचार्यको चाहिए कि सर्वदा पर्यटन करते हुए अपनी अधिकार सीमाके अन्दर आवश्यकतानुसार तत्-तत् देशमें धर्मानुशासन करे। मठाध्यक्षोंको सर्वदा मठमें ही नहीं रहना चाहिए। वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करनेके लिए जिस अवस्थामें जिस प्रकारके उपायका अवलम्बन करना उचित हो, उसका उन्हें अवलम्बन करना चाहिए। एक आचार्यको दूसरे आचार्यके विभागमें प्रवेश नहीं करना चाहिए। आवश्यकता पड़नेपर—सन्देहास्पद विषयोंके उपस्थित होनेपर—परस्पर मिलकर व्यवस्था करनी चाहिए। इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिए कि किसी समय किसीकी मर्यादा नष्ट न हो, क्योंकि मर्यादाका नाश होनेपर शुभ विषयोंके लुप्त होनेकी आशङ्का होती है। पीठाधीशके लिए वेद, वेदान्त आदि सब शास्त्रोंमें योग्यता प्राप्त करना, योगसे अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करना, संयम, सदाचार, नीतिपरायणता ये सभी सद्गुण आवश्यक थे। जिनमें इन गुणोंका अस्तित्व नहीं देखा जाता था, उन्हें पीठच्युत करनेका जनताको अधिकार था। आदि शङ्करने विशेषरूपसे जनताका ध्यान आकृष्ट किया था कि पीठाधीश वस्तुतः उन्हींका प्रतिनिधि है। मठका उच्छेद न हो इसपर भी दृष्टि रखना पीठाधीशका मुख्य कर्त्तव्य था।

श्रीविद्यार्णवनामक ग्रन्थके अनुसार शङ्करसम्प्रदायका विवरण।

शाक्तागमसाहित्यमें श्रीविद्यार्णव * नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसमें श्रीविद्याकी उपासनाके क्रमका अवलम्बन करके तन्त्रशास्त्रके सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका भली भाँति प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थमें श्रीशङ्कराचार्यकी गुरुपरम्परा तथा शिष्यपरम्पराका भी कुछ वर्णन किया गया है। यह अभी तक प्रकाशमें नहीं आया, इसलिए संक्षेपतः इस विषयमें यहाँपर कुछ लिखना उचित प्रतीत होता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस विवरणका कितना गौरव है, इसका निर्णय

---

* यह ग्रन्थ अभी तक मुद्रित नहीं हुआ, इसकी एक सम्पूर्ण प्रति काश्मीरमें विद्यमान है (द्रष्टव्य—Stein साहबका बनाया हुआ जम्मू-रघुनाथमन्दिरस्थ पुस्तकालयका सूचीपत्र)। यह अति बृहद् ग्रन्थ है। इसका फुटकर कोई-कोई अंश भिन्न-भिन्न पुस्तकालयोंमें उपलब्ध होता है।

ऐतिहासिक विद्वान् करेंगे। किन्तु तान्त्रिकसमाजमें शङ्कराचार्य और उनके सम्प्रदायकी जो प्रसिद्धि है, उसका कुछ परिचय पाठकसमाजको प्राप्त होना चाहिए। श्रीविद्याकी उपासनाके साथ शङ्कराचार्यका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस विषयमें तान्त्रिक ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही प्रमाण मिलता है। शङ्करके मठ विशेषमें जो श्रीयन्त्र है, उसका तो सबको परिज्ञान है ही। सौन्दर्यलहरी, प्रपञ्चसार आदि जिन-जिन तान्त्रिक ग्रन्थोंसे शङ्करका नाम संसृष्ट है, वे प्रायः सभी त्रिपुरा-तन्त्रके ग्रन्थ हैं। ललितात्रिशती आदि भी इसी कोटिके ग्रन्थ हैं। इसीलिए त्रिपुरासम्प्रदायके ग्रन्थमें निबद्ध शङ्करविषयक ऐतिहासिक जनश्रुतिका प्रकाशित होना उचित ज्ञात होता है।

इस ग्रन्थके अनुसार शङ्कराचार्य गौड़पादके प्रशिष्य नहीं थे। गौड़पादसे लेकर शङ्कराचार्य तक सात पुरुषोंके नाम मिलते हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—गौड़पाद, पावक, पराचार्य, सत्यनिधि, रामचन्द्र, गोविन्द और शङ्कराचार्य। इससे प्रतीत होता है कि शङ्करके गोविन्दशिष्य होनेमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु वे गौड़पादके प्रशिष्य नहीं थे। प्रचलित ग्रन्थोंमें गौड़पाद, व्यासशिष्य शुकदेवके साक्षात् शिष्य माने जाते हैं। परन्तु शुकदेव और गौड़पादके बीचमें दीर्घकालका व्यवधान होनेसे ऐतिहासिक लोग शुकके साथ गौड़पादका साक्षात् गुरुशिष्य सम्बन्ध माननेमें संकोच करते हैं। बहुत लोग कल्पना करते हैं कि शुकदेवके बाद अद्वैतज्ञानकी धारा एक प्रकार उच्छिन्न हो गई थी। गौड़पादने सम्भवतः किसी अलौकिक उपायसे आविर्भूत शुकदेवकी ही दिव्य मूर्तिसे इस ज्ञानका पुनरुद्धार किया था। इसी प्रकार शुकके साथ उनका गुरुशिष्य सम्बन्ध भी स्थिर होता है। परन्तु साधारण ऐतिहासिक लोग इसको प्रमाणरूपमें ग्रहण नहीं कर सकते। इस ग्रन्थमें गौड़पादके पूर्ववर्ती गुरुओंकी भी नामावली दी गई है, जिसको देखनेसे शुकदेव और गौड़पादके मध्यमें बहुतसे पुरुषोंका व्यवधान दीख पड़ता है। आदि विद्वान् कपिलसे ही शङ्करसम्प्रदायकी प्रवृत्ति हुई है, यह इस ग्रन्थकारका मत है। कपिलसे गौड़पादतक गुरुओंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—कपिल, अत्रि, वसिष्ठ, सनक, सनन्दन, भृगु, सनत्सु-जात, वामदेव, नारद, गौतम, शौनक, शक्ति, मार्कण्डेय, कौशिक, पराशर, शुक, अङ्गिरा, कण्व, जाबालि, भरद्वाज, वेदव्यास, ईशान, रमण, कपर्दी, भूधर, सुभट, जलज, भूतेश, परम, विजय, मरण, पद्मेश, सुभग, विशुद्ध, समर,

कैवल्य, गणेश्वर, सपाथ, विबुध, योग, विज्ञान, अनंग, विभ्रम, दामोदर, चिदाभास, चिन्मय, कलाधर, वीरेश्वर, मन्दार, त्रिदश, सागर, मृड, हर्ष, सिंह, गौड़, वीर, घोर, ध्रुव, दिवाकर, चक्रधर, प्रथमेश, चतुर्भुज, आनन्द-भैरव, धीर, गौड़पाद *।

इस ग्रन्थके अनुसार शङ्कराचार्यके १४ शिष्य थे। ये सब देवीके उपासक और निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ अलौकिकशक्तिसम्पन्न थे, ऐसा वर्णन है। १४ शिष्योंमें ५ शिष्य संन्यासी थे और ९ गृहस्थ थे। ५ संन्यासी शिष्योंमें एक शिष्यका नाम शङ्कर भी था, अवशिष्ट चारोंके नाम—पद्मपाद, बोध, गीर्वाण और आनन्दतीर्थ थे। गृहस्थ शिष्योंके नाम थे—सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण, मल्लिकार्जुन, त्रिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव और दामोदर।

पद्मपादके छः शिष्य थे, उनके नाम यों हैं—माण्डल, परपावक, निर्वाण, गीर्वाण, चिदानन्द और शिवोत्तम। ये सब संन्यासी थे। बोधाचार्यके बहुत शिष्य थे। लिखा है कि सब देशोंमें उनके दो प्रकारके शिष्य थे—संन्यासी और गृही। गीर्वाणेन्द्रके मुख्य शिष्यका नाम विद्वद्गीर्वाण था। विद्वद्गीर्वाणके शिष्यका नाम विबुधेन्द्र, बिबुधेन्द्रके शिष्यका नाम सुधीन्द्र और सुधीन्द्रके शिष्यका नाम मन्त्रगीर्वाण था। मन्त्रगीर्वाणके गृही और संन्यासी दोनों प्रकारके शिष्य थे। आनन्दतीर्थके सभी शिष्य गृही थे। वे लोग पादुकापीठकी आराधना करते थे। सुन्दराचार्यके तीन प्रकारके शिष्य थे—पीठनायक, संन्यासी और गृही। विष्णुशर्माके शिष्यका नाम प्रगल्भाचार्य था। ये विद्यार्णवग्रन्थकार प्रगल्भाचार्यके शिष्य थे। ग्रन्थमें लिखा है कि इस ग्रन्थके पूर्ण होनेपर जगद्धात्री महामाया उनके सामने प्रकट होकर बोली—वत्स! वर मांगो। जगद्धात्रीको सामने खड़ी देखकर उन्होंने कहा—हे माता, यदि कोई साधक केवल हमारे ग्रन्थके आधारपर गुरुक्रम और मन्त्रादि देखकर मुझे गुरु मानते हुए भक्तिपूर्वक जप करे, तो दीक्षित न होनेपर भी उसको सिद्धि प्राप्त हो।

---

* इस नामावलीके किसी किसी अंशमें विचित्रता देख पड़ती है। १—शक्ति और पराशरमें आनन्तर्य नहीं है, बीचमें दो पुरुषोंका व्यवधान है। २—पराशर और शुकके बीचमें वेदव्यासका नाम नहीं है, परन्तु शुकके पिता वेदव्यासका नाम शुकके चार शिष्योंके बाद दिया गया है।

देवीने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुमोदन किया।

लक्ष्मणाचार्यकी तपस्या, विद्या और श्री असाधारण थी। चौथी अवस्थामें वीतराग होकर वे इधर-उधर देशाटन करते थे। इसी समयमें घूमते-घूमते वे एक दिन प्रौढ़देव नामक किसी राजाकी राजधानीमें पहुंचे। प्रौढ़देवने उनके लिए रहनेका स्थान, अन्न, भूषण और परिचारकोंका प्रबन्ध कर दिया। एक दिन राजाकी सभामें जिस समय लक्ष्मण उपस्थित थे, उस समय वणिकोंने द्वीपान्तरसे प्राप्त हुई वस्त्रादि बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ राजाको भेंट कीं। राजाने उन लोगोंके द्वारा दिये गये मूल्यवान् वस्त्र आचार्य लक्ष्मणको दे दिये। आचार्य लक्ष्मण उन्हें लेकर अपने वासस्थानपर चले आये। कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उन्होंने अग्निमें वस्त्रोंकी आहुति दे दी। प्रौढ़देवके पास जब यह खबर पहुँची, तब उन्होंने वस्त्र लौटाने अथवा उनका मूल्य भेज देनेकी प्रार्थना करते हुए उनके पास दूतके द्वारा सन्देश भेजा। यह सुनकर लक्ष्मणको क्रोध आया, उन्होंने 'ब्रह्मस्वापहारक' कह कर राजाको शाप दिया कि तुम निर्वंश हो जाओ। इसके बाद लक्ष्मणने अपने इष्टदेवतासे प्रार्थना करके वस्त्र लौटा दिये। इसके पश्चात् लक्ष्मण प्रौढ़देवके नगरको छोड़कर दक्षिणकी ओर चले गये। लक्ष्मणकी अलौकिक शक्तिकी बात सुनकर प्रौढ़देवका चित्त उद्विग्न हुआ और उनके पास जाकर उनके क्रोधकी शान्तिके लिए प्रौढदेवने विनयपूर्वक बहुत प्रार्थना की। उसकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट होकर लक्ष्मणने उससे कहा कि तुम्हें पुत्र होगा, परन्तु उससे तुम सुखी नहीं होगे। तदनन्तर समय पाकर सिद्ध महात्माके वरके अनुसार राजाके एक कुमार उत्पन्न हुआ। लेकिन पुत्र होतेही राजाका देहावसान हो गया। प्रसिद्धि है कि उस समय इस ग्रन्थके रचयिता प्रजाके अनुरोधसे राजकुमारके प्रतिनिधिरूपमें राजभार लेकर उनका शासन करने लगे और उन्होंने श्रीचक्रके आकारमें नगर स्थापित कर उसका श्रीविद्यानगर नाम रक्खा। उसके बाद राजकुमारके वयःस्थ होनेपर अम्बदेव नामसे उसे राजगद्दीपर बैठाया और उसीके आदेशसे उसकी सभाकी विद्वन्मण्डलीकी प्रार्थनासे भगवतीसे आदेश लेकर प्राचीन आगम-ग्रन्थ *, यामलग्रन्थ प्रभृतिका विशेषरूपसे आलोचन करते हुए तथा कादि मत

* तन्त्रराज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, योगिनीहृदय इत्यादि।

और हादि मत दोनोंके सूक्ष्म रहस्यका अनुसरण करते हुए उन्होंने इस विशिष्ट ग्रन्थका निर्माण किया।

मल्लिकार्जुनके अधिकांश शिष्य बिन्ध्यदेशमें रहते थे। इसी प्रकार त्रिविक्रमके शिष्य जगन्नाथक्षेत्रमें, श्रीधरके शिष्य गौड़, मिथिला तथा बंगदेशमें और कपर्दीके शिष्य काशी, अयोध्या प्रभृति देशमें रहते थे।

केशव और दामोदरके विषयमें ग्रन्थमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलता*।

शङ्करका तिरोधान—

शङ्कराचार्यके जीवनवृत्तके विषयमें यहाँ लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह प्रायः सबको विदित ही है। सभी भाषाओंमें लिखित प्राचीन विभिन्न शङ्करचरितमें इनके जीवनके विषयमें जिस प्रकारका विवरण मिलता है, उसकी प्रामाणिकताके विषयमें बहुत अंशोंमें ऐतिहासिकोंका गहरा मत-भेद है। इस सम्बन्धमें स्वतन्त्र ग्रन्थ, लेख प्रभृति विभिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हुए हैं और हो भी रहे हैं। जिनको इस विषयकी जिज्ञासा है, उनके लिए वे सब लेख तथा ग्रन्थ अवश्य दर्शनीय हैं। स्वयंप्रकाशमुनिने एक-श्लोकीके व्याख्यानमें एक श्लोकमें शङ्करके जीवनका कथन किया है। वह श्लोक यह है—

"अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥"

---

* गद्यवल्लरी नामसे श्रीविद्याका एक पद्धतिग्रन्थ उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थके रचयिताका नाम श्रीनिजात्मप्रकाशानन्दनाथ मल्लिकार्जुन योगीन्द्र है। यह ग्रन्थ १४३५ शकाब्दमें अर्थात् १५१३ खीष्टाब्दमें (शके वाणत्रिवेदशशिसम्मिते) लिखा गया था, ऐसा ग्रन्थसे ही पता चलता है। यह श्रीशङ्कराचार्यके सम्प्रदायका तान्त्रिक ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भमें शङ्करकी गुरुपरम्परा तथा शिष्यपरम्पराका कुछ वर्णन मिलता है। पाठकोंकी औत्सुक्य-निवृत्तिके लिए उसका सारांश यहांपर दिया जा रहा है। इस मतमें शङ्करसम्प्रदायके प्रवर्तक शिव हैं। इसके बाद गुरुओंका नाम यों है—विष्णु, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौड़पाद, गोविन्द, शङ्कराचार्य। शङ्करकी शिष्यपरम्परा ऐसी है—विश्वरूप, बोधघन, ज्ञानघन, ज्ञानोत्तम, शिव, ज्ञानगिरि, सिंहगिरि, ईश्वरतीर्थ, नृसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, शिव, भारती-तीर्थ, विद्यारण्य, मलयानन्द, देवतीर्थसरस्वती, यादवेन्द्रसरस्वती, नृसिंहसरस्वती, माधवेन्द्र-सरस्वती, मल्लिकार्जुन योगीन्द्र, रामदेव, दायदेवयति, गगनानन्द, चिद्घनानन्द, महेश्वरानन्द, चिदानन्द और आनन्दचित्प्रतिबिम्ब।

इससे यह सिद्ध होता है कि शङ्कर दीर्घजीवी नहीं रहे। थोड़ी ही अवस्थामें विद्याका संग्रह कर उन्होंने ग्रन्थोंका निर्माण तथा धर्मप्रचार किया था।

जिस प्रकार शङ्करके जीवनवृत्तके विषयमें सर्वांशमें सर्वत्र मतैक्य नहीं है, उसी प्रकार उनके देहान्तके विषयमें भी प्राचीन कालसे ही मतभेद दीख पड़ता है। अध्यापक वैंकटेशन् इस सम्बन्धमें प्रचलित मतोंकी समालोचना करके जिस सिद्धान्तको पहुंचे हैं, उसका सारांश नीचे दिया जा रहा है। परन्तु यह भी सर्ववादिसिद्ध मालूम नहीं पड़ता। किसी-किसीके मतसे इसमें पीठविशेषके प्रति पक्षपात अवश्य दीख पड़ता है।

माधवाचार्यने * शङ्करविजयमें कहा है कि शङ्कराचार्यने काश्मीरमें सर्वज्ञ पीठपर आरूढ होकर वहांसे अपने शिष्योंको विभिन्न मठोंमें मठकार्य निरीक्षणके लिए भेज दिया था और स्वयं वहांसे बदरीनारायणकी ओर रवाना हो गये। यह भी प्रसिद्धि है कि वे बदरीनारायणसे कैलासधाममें जाकर तिरोहित हो गये। चिद्विलासेन्द्रने अपने शङ्करविजयमें कहा है कि शङ्कराचार्यने कांचीमें सर्वज्ञपीठपर आरोहण किया था, काश्मीरमें नहीं। उसके बाद उन्होंने अनेक तीर्थोंका दर्शन करके बदरीनारायण और कैलासकी यात्रा की थी। माधवाचार्यने जिन दो श्लोकोंमें (१६।५१-५२) शङ्करके काश्मीरमें सर्वज्ञपीठारोहणके विषयमें वर्णन किया है, वे दोनों श्लोक राजचूड़ामणिके शङ्कराभ्युदयके ही हैं (८। ६८-६९), परन्तु शङ्कराभ्युदयमें लिखा है कि यह घटना काञ्चीमें हुई थी, काश्मीरमें नहीं—यही भेद है। शङ्करसम्प्रदायके मतानुसार शङ्कर अन्तिम समय तक काञ्चीमें ही थे। कम्पासरोवरतीरवासिनी भगवती कामेश्वरी अथवा कामकोटिदेवीकी निरन्तर अर्चना करते हुए, अन्तमें ब्रह्मानन्दको प्राप्त हुए थे। काञ्चीके कामकोटिपीठके ३८ वें शङ्कराचार्य, जिनका नाम धीरशङ्कर था, समग्र भारतमें पर्यटन करके काश्मीरमें

---

* प्रसिद्ध माधवाचार्य इस ग्रन्थके कर्ता नहीं हैं। केवल प्रथम मंगलश्लोक ही उनका है। इस ग्रन्थका यथार्थ रचयिता माधवनामसे प्रसिद्ध कोई दूसरा था। उसने भारतचम्पूकी भी रचना की थी। दोनों ही ग्रन्थोंमें ग्रन्थकारने 'नव-कालिदास' के नामसे अपना उल्लेख किया है। इससे भी दोनों ग्रन्थकारोंकी अभिन्नता सिद्ध होती है। और भी एक बात है—शङ्करविजयके २४ श्लोक (१२ सर्ग १–२४) राजचूड़ामणि दीक्षितके शङ्कराभ्युदय ग्रन्थसे लिये गये हैं (४।१।२।६।७।१४–२३)। ये राजचूड़ामणि नायक राजाओंके सभाकवि थे।

सर्वज्ञपीठपर आरूढ़ हुए थे और अन्तमें हिमालयकी दत्तात्रेयगुहामें तिरोहित हो गये थे। अनुमान किया जा सकता है कि धीरशङ्करकी घटनाएँ आदि शङ्करमें किसी तरह आरोपित हो गई हैं। मलयालम् अक्षरमें एक शङ्कराचार्य-चरित प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि शङ्करने वृषाचल अथवा गजाचलमें पीठारोहण करके वहींपर सिद्धि प्राप्त की थी। श्रीवरदराजस्वामीके स्थानका नाम हस्तिगिरि—वृषाचल है। हस्तिगिरिका ही नामान्तर गजाचल है। यह स्थान काञ्चीमें है। सम्भव है कि शङ्करने इसी स्थानमें सर्वज्ञपीठपर आरोहण किया हो और अन्त तक यहीं रहे हों। सदाशिवब्रह्मेन्द्रकृत गुरुरत्नमालिका टीका तथा गुरुपरम्परास्तोत्रमें लिखा है कि भगवान् शङ्कर अपने जीवनके अन्तिम समय तक काञ्चीमें ही विराजमान थे और उनका देहान्त भी वहींपर हुआ था। एक हस्तलिखित पुस्तकमें लिखा है—

> "तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पदम्।
> विश्वरूपयतिं स्थाप्य स्वाश्रमस्य प्रचारणे॥"

विश्वरूप सुरेश्वरका नामान्तर है।

प्रसिद्धि है कि शङ्कराचार्य कैलाससे ५ स्फटिक लिङ्ग लाये थे। उनमेंसे ४ लिङ्गोंकी स्थापना उन्होंने क्रमशः बदरीनारायण, नीलकण्ठक्षेत्र (नेपालमें), शृङ्गेरी और चिदम्बरम्में की थी। सर्वश्रेष्ठ पञ्चम लिङ्ग अपने पास रख छोड़ा था। वह योगलिङ्ग नामसे प्रसिद्ध था। काञ्चीमें शङ्कर हमेशा उसीकी पूजा किया करते थे। देहत्यागके समय शङ्करने उस लिङ्गको सुरेश्वरके हाथमें समर्पण कर काञ्चीपीठ और वहांके शारदामठका भार भी उन्हींको दे दिया था। (यह शारदामठ शृङ्गेरीके शारदापीठसे भिन्न है)। शिवरहस्यमें भी (९।१६) लिखा है कि योगलिङ्गकी स्थापना काञ्चीमें ही हुई थी। मार्कण्डेयसंहितामें (काण्ड ७२ परिस्पन्द ७) लिखा है कि शङ्करने कामकोटिपीठमें योगलिङ्गकी प्रतिष्ठा की थी और उसके अर्चनके लिए सुरेश्वराचार्यकी नियुक्ति की थी। रामभद्रदीक्षितकृत पतञ्जलिचरितसे (८।७१) भी प्रतीत होता है कि शङ्करका देहावसान काञ्चीमें ही हुआ था। वैंकटेशन्के मतसे नैषधचरितके १२वें सर्गमें जिस काञ्चीस्थ स्फटिकलिङ्गका वर्णन है, वह शङ्करस्थापित योगेश्वरलिङ्ग ही है। इस लिङ्गके नामके विषयमें कहीं यागेश्वर और कहीं योगेश्वर

इस प्रकार पाठभेद मिलता है। पूर्वापरका अच्छी तरह समन्वय करके उन्होंने निश्चय किया है कि 'योगेश्वर' पाठ ही ठीक है।

शङ्कराचार्यके समयकी और उनसे पूर्वकी दार्शनिक परिस्थिति

बादरायणके ब्रह्मसूत्र तथा उसके शाङ्करभाष्यकी आलोचना करनेसे प्रतीत होता है कि बादरायणके समयसे लेकर शङ्करके समय तक देशमें विभिन्न प्रकारके धर्म तथा तत्सम्बन्धी दार्शनिक मतवादोंका प्रचार हुआ था। उनमें से कतिपय सिद्धान्तोंको छोड़कर शेष सभी सम्पूर्णतः या अंशतः अवैदिक थे *। ये सभी अवैदिक सम्प्रदाय कहीं-कहीं वैदिकसम्प्रदायके विरोधी थे और कहीं-कहीं वैदिकसम्प्रदायसे पृथक् रहनेपर भी अपनेको वैदिकसम्प्रदायका अंग मानते थे। कट्टर वैदिक उन्हें वैदिक नहीं मानते थे। शङ्करने वैशेषिक, सांख्य और योगदर्शनको भी एक प्रकारसे वेदबाह्य ही माना है। इनके अतिरिक्त जैन, बौद्ध, पाञ्चरात्र और पाशुपत दर्शन तो उनकी दृष्टिमें स्पष्टतया अवैदिक थे ही। इसीलिए तर्कपादमें उन्होंने इन सब मतोंका विशेषरूपसे खण्डन किया है। वैशेषिक मत एक समयमें पाशुपत मतमें मिल गया था। संभव है, इसीलिए वह भी अवैदिक दर्शनोंमें गिना जाने लगा हो। लेकिन इसका यथार्थ कारण ज्ञात नहीं है। बादरायणने वैशेषिकमतका खण्डन किया है, परन्तु न्यायका खण्डन नहीं किया। भाष्यमें न्यायदर्शनका † प्रायः किसी जगह उल्लेख भी नहीं है। इसी प्रकार प्राचीन बौद्धतर्कग्रन्थोंमें भी वैशेषिकका ही उल्लेख है, न्यायका उल्लेख क्वचित् ही मिलता है। ऐसी अवस्थामें, क्या उस समय गौतमप्रणीत न्यायसूत्र विद्यमान नहीं थे, ऐसी जिज्ञासाका उदय होना स्वाभाविक ही है। विचार

---

* सप्तम शताब्दीमें जो धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित थे, उनका कुछ उल्लेख हर्षचरितमें (पृ० ६३२, जीवानन्द) मिलता है। वे हैं—भागवत, कापिल, जैन, लौकायतिक, काणाद, पौराणिक, ऐश्वर-कारणिक, कारन्धमिन (धातुवादी), सप्ततान्तव (मीमांसक?), शाब्दिक, बौद्ध, पाञ्चरात्रिक और औपनिषद। इनमेंसे औनिषदोंको छोड़कर शेष प्रायः सभी एक प्रकारसे अवैदिक ही हैं। इसी ग्रन्थके दूसरे प्रकरणमें (पृ० ३९९) औपनिषदोंके विषयमें कहा गया है—

'संसारासारत्वकथनकुशला ब्रह्मवादिनः'।

† 'प्रवर्तनालक्षणा दोषाः' यह न्यायसूत्र (१।१।१८) ब्रह्मसूत्रभाष्यमें (२।२।३७) उद्धृत हुआ है।

करनेसे प्रतीत होता कि न्यायसूत्र प्राचीन ग्रन्थ है, क्योंकि आर्यदेवने शतशास्त्रमें न्यायदर्शनके द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकके २ सूत्रों (३९,४१) का और तृतीयाध्यायके प्रथम आह्निकके पांच सूत्रों (१, ७, १२, १४, १८) का प्रसंगतः उल्लेख किया है। किन्तु टीकाकारने वैशेषिकसूत्र कहकर इन सूत्रोंका परिचय दिया है। टीकाकारके कथनको देखकर किसी पण्डितने कल्पना की है कि आर्यदेवके समयमें न्यायदर्शन नामसे पृथक् दर्शन नहीं था। उस समय इसके २य, ३य और ४र्थ अध्याय वैशेषिकग्रन्थविशेषके अङ्ग माने जाते थे*।

तर्कपादमें सर्वास्तिवाद † तथा विज्ञानवादका भी खण्डन है। राजा कनिष्कके समयमें काश्मीरमें जो बौद्धसंगीति हुई थी, उसमें सूत्र, विनय तथा अभिधर्मके ऊपर विभाषा (भाष्य अथवा टीका) बनाई गई थी। उसका नाम उपदेशशास्त्र, विनयविभाषाशास्त्र और अभिधर्मविभाषाशास्त्र रक्खा गया था। इस संगीतिके अध्यक्ष सर्वास्तिवादी वसुमित्र थे। विभाषाशास्त्र ही सर्वास्तिवादियोंका मुख्य शास्त्र है। विभाषाका अनुसरण करनेके कारण सर्वास्तिवादियोंका वैभाषिक नाम पड़ा। सभाके अध्यक्ष वसुमित्रने स्वयं अभिधर्मप्रकरणपाद और अभिधर्मधातुवादकी रचना की थी। सर्वास्तिवादियोंके अभिधर्मका मूल ग्रन्थ कात्यायनीपुत्रका ज्ञानप्रस्थानसूत्र है। इस ग्रन्थमें छः वाद थे। १—संगीतिपर्याय, इसके निर्माता महाकौष्ठिल थे। २—धातुवाद, इसके निर्माता वसुमित्र थे, [यशोमित्रके मतसे धातुकाय वसुमित्रका ग्रन्थ नहीं है, किन्तु पूर्वकाय उनका ग्रन्थ है]। ३—प्रज्ञप्तिसार, इसके निर्माता मौद्गलायन थे। ४—धर्मस्कन्ध, इसके निर्माता सारिपुत्र थे। ५—विज्ञानकाय, इसके निर्माता देवशर्मा थे और ६—प्रकरणपाद, इसके निर्माता वसुमित्र थे।

---

* द्रष्टव्य—Pre-Dinnaga Buddhist Text on Logic from Chinese sources, G. Tucci (1929), Introduction, p. 27.

† प्राचीन समयमें १८ बौद्ध सम्प्रदाय थे। यथा—सर्वास्तिवाद, काश्यपीय, महीशासक, धर्मगुप्तीय, बहुश्रुतीय, ताम्रशाटीय, विभज्यवादी, कुरुकुल्लक, आवन्तिक, वात्सीपुत्रीय, पूर्वशैल, अपरशैल, हैमवत, लोकोत्तरवादी, प्रज्ञप्तिवादी, महाविहार, जेतवनीय, अभयगिरिवासीय। इन अठारह सम्प्रदायोंका वर्णन वसुमित्रके अष्टादशनिकायशास्त्र नामक एक ग्रन्थमें है। ये वसुमित्र आचार्य धर्मत्रातके भागिनेय थे।

वसुबन्धुका अभिधर्मकोष वैभाषिकसम्प्रदायका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसके ऊपर गुणमति, वसुमित्र (नवीन), और यशोमित्रकी ('स्फुटार्था') टीकाएँ हैं। इनमें दो टीकाएँ अधिक प्राचीन हैं। इसपर स्थिरमतिके भी एक व्याख्यानका पता चलता है। वसुबन्धुके ही समयमें संघभद्र भी इस सम्प्रदायके एक बड़े दार्शनिक थे। इन्होंने लगातार १२ वर्ष तक वसुबन्धुके अभिधर्म-कोषकी विशेषरूपसे आलोचना करके न्यायानुसार नामक एक ग्रन्थ बनाया था। इसमें बहुत स्थलोंपर वसुबन्धुके ऊपर कटाक्ष किया गया है। कहीं-कहीं वसुबन्धुके मतका खण्डन भी किया गया है, परन्तु इससे भी वसुबन्धुके अभिधर्मकोषका गौरव नष्ट नहीं हुआ। शङ्कराचार्य वसुबन्धुके, तथा सम्भव है कि यशोमित्रके भी, ग्रन्थोंसे परिचित थे, ऐसा प्रतीत होता है। ब्रह्मसूत्र (२।२।२४) के भाष्यमें 'सौगते हि समये' इत्यादि कहकर जिन वचनोंका उद्धार किया गया है, वे यशोमित्रके स्फुटार्थामें 'उक्तं हि भगवता पृथिवीभोग……कुत्र प्रतिष्ठितः' इत्यादि रूपमें उपलब्ध होते हैं *।

शङ्कराचार्यके पहले सर्वास्तिवादके समान विज्ञानवाद भी विशेषरूपसे प्रसिद्ध था। यह योगाचारसम्प्रदायका सिद्धान्त है। यद्यपि लङ्कावतार-सूत्र आदि ग्रन्थोंमें किसी न किसी प्रकार विज्ञानवादका स्वरूप उपलब्ध था, तथापि दार्शनिक क्षेत्रमें इसकी प्रतिष्ठा मैत्रेयनाथ, असङ्ग, वसुबन्धु और इन लोगोंके अनुयायियोंके प्रयत्नसे हुई थी। मैत्रेयनाथ तथा असङ्गके अनन्तर वसुबन्धुने ही विज्ञानवादके इतिहासमें उच्च-स्थान प्राप्त किया था। अपने बड़े भाई असङ्गके प्रभावसे वसुबन्धु पूर्वमतको छोड़कर विज्ञानवादी हो गये थे और इसी सिद्धान्तका अवलम्बन करके उन्होंने बहुतसे ग्रन्थोंका निर्माण किया

* वैभाषिक लोग आकाशको अवस्तु अथवा आवरणाभावमात्र मानते थे, ऐसा शङ्करा-चार्यका विश्वास था। इसीलिए वे आकाशके भावत्वका प्रतिपादन करनेके लिए प्रवृत्त हुए थे। परन्तु वस्तुतः अभिधर्मकोष अथवा उसकी टीकामें आकाश भाव पदार्थ ही माना गया है, अभाव पदार्थ नहीं माना गया। यशोमित्रने कहा है—"तद् अनावरणस्वभावम् आकाशम् तद् अप्रत्यक्विषयत्वादस्य धर्मानावृत्त्या अनुमीयते, न तु आवरणाभावमात्रम्। अत एव च व्याख्यायते यत्र रूपस्य गतिरिति" (अभिधर्मकोषव्याख्या—१।५५।५ Professor Wogihara. का संस्करण, टोकियो, १९३२)। इससे सिद्ध होता है कि वैभाषिकमतमें आवरणाभाव आकाशका लिङ्ग है, आकाशका स्वरूप नहीं है। वैभाषिक लोग भावरूप आकाश मानते हैं, इसीलिए कमलशील तत्त्वसंग्रहपञ्जिकामें वैभाषिकोंको बौद्ध कहनेमें हिचके हैं।

था। बसुबन्धुके प्रधान शिष्यमण्डलमें आचार्य स्थिरमति, आर्य विमुक्तसेन, आचार्य गुणप्रभ तथा आचार्य दिङ्नागने अति ख्याति प्राप्त की थी। बसुबन्धुकी विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (विंशिका तथा त्रिंशिका) विज्ञानवादका प्रधान ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त बसुबन्धुरचित* मध्यान्तविभागसूत्रका भाष्य एवं असङ्गकृतमहायानसूत्रालङ्कारकी वृत्ति भी इस मतको जाननेके लिए श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। स्थिरमतिने अपने गुरु द्वारा रचित त्रिंशिका, महायानसूत्रालङ्कारवृत्ति और मध्यान्तविभागसूत्रभाष्यके ऊपर तथा काश्यपपरिवर्त एवं पञ्चस्कन्धप्रकरणके ऊपर भी टीका लिखी थी। ये अष्टादश निकायोंमें निष्णात थे। आर्य विमुक्तसेन प्रज्ञापारमिताके विशेषज्ञ थे और गुणप्रभने विनयमें प्राधान्य प्राप्त किया था। किन्तु वसुबन्धुके सर्वश्रेष्ठ शिष्य दिङ्नाग थे। दिङ्नागके समान शास्त्रार्थमें कुशल पण्डित भारतवर्षमें विरले ही हुए हैं। दिङ्नागने प्रमाणके ऊपर ही विशेषरूपसे आलोचनाकी थी। कहीं-कहींपर अपने गुरुसे उनका मतभेद भी दीख पड़ता है। इनका प्रमाणसमुच्चय और उसकी वृत्ति, आलम्बनपरीक्षा और उसकी वृत्ति, त्रिकालपरीक्षा, नयद्वार अथवा नयमुख आदि ग्रन्थ शङ्कराचार्यके समयमें प्रतिष्ठित ग्रन्थोंमें गिने जाते थे†। प्रमाणसमुच्चयमें प्रत्यक्ष तथा अनुमानकी आलोचना की गई है। स्वलक्षण तथा सामान्यलक्षण इन दो प्रकारके प्रमेयोंका ग्रहण करनेके लिए प्रत्यक्ष तथा अनुमान ये दो प्रमाण माने गये हैं। अर्थक्रियासमर्थ वस्तु ही उनके मतमें स्वलक्षण है। जो इससे भिन्न हैं वे सामान्यलक्षण हैं। दिङ्नागके मतमें कल्पनासंसृष्ट ज्ञान अर्थात् नामजात्यादिसंयुत ज्ञान परोक्ष है और जो ज्ञान कल्पनाहीन अर्थात् नामजात्यादिसे संयुत नहीं है, वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष अभ्रान्त होना चाहिये, ऐसा दिङ्नागके ग्रन्थोंमें नहीं देखा जाता।

---

* यह ग्रन्थ मैत्रेयनाथका बनाया हुआ है, ऐसी प्रसिद्धि है। अध्यापक H. Ui ने प्रमाणित किया है कि महायानसूत्रालङ्कारकारिका भी वस्तुतः असङ्गरचित नहीं है, किन्तु मैत्रेयनाथरचित ही है। इसी प्रकार योगाचारभूमिशास्त्र, जो कि योगाचारमतका आकर ग्रन्थ है, असङ्गरचित ही है ऐसी प्रसिद्धि है। किसीके मतमें यह भी मैत्रेयनाथकी कृति है। बोधिसत्त्वभूमि इस ग्रन्थका ही एक अंश है।

† दिङ्नागने अपने गुरुके अभिधर्मकोषपर 'मर्मप्रदीप' नामकी टीका बनाई थी, ऐसी तिब्बतमें प्रसिद्धि है। नयप्रवेशसूत्रके विषयमें मतभेद है।

दिङ्नागका शिष्य ईश्वरसेन था, किन्तु उसकी अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई। ईश्वरसेनके शिष्य धर्मकीर्तिने केवल बौद्ध न्यायशास्त्रमें ही नहीं, अपि तु भारतीय न्यायशास्त्रके इतिहासमें अति उच्चस्थान प्राप्त किया था। धर्मकीर्तिके प्रधान ग्रन्थ प्रमाणवार्तिक (अ० १—४), प्रमाणविनिश्चय (यह ग्रन्थ प्रमाणवार्तिकका संक्षेप है), न्यायबिन्दु, हेतुबिन्दु, सम्बन्धपरीक्षा (ग्रन्थकाररचित-वृत्तिसहित), सन्तानान्तरसिद्धि, चोदनाप्रकरण आदि हैं। प्रमाणवार्तिकके चार अध्यायोंका विषयक्रम इस प्रकार है—१म अध्यायमें स्वार्थानुमान, २य अध्यायमें प्रामाण्यविचार, ३यमें प्रत्यक्ष, ४र्थमें परार्थ अनुमान। प्रथम अध्याय अथवा स्वार्थानुमानाध्यायकी टीका धर्मकीर्तिने स्वयं ही बनाई थी, परन्तु और तीन अध्यायोंकी टीका बनानेका भार उन्होंने अपने शिष्य देवेन्द्रबुद्धिको दिया था। देवेन्द्रबुद्धिने दो बार टीका बनाई, किन्तु धर्मकीर्ति उससे सन्तुष्ट नहीं हुए। तृतीय बार देवेन्द्रबुद्धिने जब टीका बनाई तब उसमें उन्होंने अर्द्धसम्मति दी *।

---

* धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंके ऊपर जो टीकाएँ बनी थीं। उनमें तीन सम्प्रदाय देख पड़ते हैं—प्रथम सम्प्रदायके प्रवर्त्तकोंमें देवेन्द्रबुद्धि और उनके शिष्य शाक्यबुद्धिका नाम उल्लेख-योग्य है। प्रभाबुद्धिका नाम भी मिलता है, किन्तु उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। उन्होंने सिर्फ प्रमाणवार्तिकके ऊपर टीका बनाई थी। विनीतदेव भी इसी सम्प्रदायके थे, परन्तु उन्होंने प्रमाणविनिश्चय तथा न्यायबिन्दुके ऊपर भी टीका बनाई थी। २ य सम्प्रदायके प्रवर्तक काश्मीरी ब्राह्मण धर्मोत्तर थे। ये धर्मकीर्तिके साक्षात् शिष्य नहीं थे, इन्होंने न्यायबिन्दुके ऊपर बृहत् टीका और प्रमाणविनिश्चयके ऊपर लघुटीका बनाई थी, एवं प्रमाणपरीक्षा, अपोहप्रकरण, क्षणभंगसिद्धि तथा परलोकसिद्धि उनके नामसे प्रसिद्ध हैं। वाचस्पति मिश्रने तात्पर्यटीकामें बहुत जगह धर्मोत्तरका उल्लेख किया है। ३ य सम्प्रदायके नेता प्रज्ञाकर गुप्त थे, ये बङ्गदेशके आचार्य थे। इनके मतमें प्रमाणवार्त्तिक दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चयकी केवल टीका ही नहीं है, जैसा कि दूसरे सम्प्रदायके लोग कहते हैं, किन्तु समग्र महायान धर्मका प्रतिपादन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। तृतीय सम्प्रदायके प्रायः सभी आचार्य गृही तथा तान्त्रिक थे। प्रज्ञाकरके ग्रन्थका नाम वार्तिकालङ्कार है। इन्होंने प्रमाणवार्तिकके प्रथम अध्यायको छोड़कर शेष तीनों अध्यायोंके ऊपर टीका लिखी थी। प्रथम अध्यायपर टीका न लिखनेका कारण यह है कि उसपर ग्रन्थकारकी स्वरचित टीका विद्यमान थी। प्रज्ञाकर गुप्तका ग्रन्थ अति-बृहत् है। इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई थी कि इसके कारण ग्रन्थकार 'अलङ्कारोपाध्याय' नामसे प्रसिद्ध हुए थे। उदयनाचार्यने तात्पर्यपरिशुद्धिमें इनका उल्लेख किया है। बौद्ध न्यायशास्त्रके इतिहासका विशेष विवरण जाननेके लिए रूस देशीय पण्डित Stcherbasky का Buddhist Logic नामका ग्रन्थ देखना चाहिए।

सर्वदर्शनसंग्रहमें माधवाचार्यने संक्षेपमें पाशुपतमतकी आलोचना की है। उदयनाचार्यने भी न्यायकुसुमाञ्जलिमें पाशुपतमतका उल्लेख किया है। न्यायसार और भूषणके रचयिता काश्मीरनिवासी नैयायिक भासर्वज्ञने पाशुपतमतका व्याख्यान करते हुए गणकारिका नामक ग्रन्थ बनाया था। न्यायवार्तिककार उद्योतकराचार्यने पाशुपताचार्य कहकर अपना परिचय दिया है। पुराणोंमें तथा महाभारतमें अनेक स्थलोंमें पाशुपतदर्शनका वर्णन मिलता है। अत एव अति प्राचीनकालमें भी यह सम्प्रदाय विद्यमान रहा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वेदमें रुद्रवाचक पशुपति शब्दका प्रयोग बहुधा मिलता है, परन्तु उस समय पशुपतिशब्दका कोई पारिभाषिक अर्थ था, ऐसा प्रतीत नहीं होता। वामनपुराणमें (६।८६—९१) शिवलिङ्गकी चार प्रकारकी उपासनाओंका वर्णन है—शैव, पाशुपत अथवा महापाशुपत, कालदमन और कापालिक। इन सब सम्प्रदायोंके प्रवर्तक ब्रह्मा थे *। महर्षि भारद्वाज और उनके शिष्य राजा सोमकेश्वर पाशुपत धर्मके व्याख्याता थे †। शिवपुराणमें लिखा है कि (वायवीयसंहिता अ० २) वासुदेव कृष्णने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता उपमन्युके निकट पाशुपतधर्मकी शिक्षा पाई थी। रुरु, दधीचि, अगस्त्य और उपमन्युने पृथक्-पृथक् संहिताओंका निर्माण कर पाशुपतयोगशिक्षाका मार्ग सुगम बनाया था (शिवपुराण, वायवीय संहिता (क) २८।१५।१६)। पाशुपतोंका सूत्रात्मक एक दार्शनिक ग्रन्थ था—इसका नाम पाशुपतशास्त्रपञ्चार्थदर्शन था। यह ग्रन्थ पांच अध्यायोंमें विभक्त था, अत एव यह पञ्चाध्यायी नामसे भी प्रख्यात है। प्रसिद्धि है कि शङ्करजीने स्वयं ही इन सूत्रोंका प्रकाशन किया था। इस ग्रन्थके ऊपर शिवजीके अट्ठाईसवें अवतार राशीकरने एक भाष्य रचा था, जिसका उल्लेख माधवा-

---

* यामुनाचार्यने आगमप्रामाण्य नामक ग्रन्थमें (पृ० २६) एक श्लोक उद्धृत किया है। उसमें शैव, पाशुपत, लागुड और सौम्य इन चार प्रकारके शैव सम्प्रदायोंका उल्लेख मिलता है—

शैवं पाशुपतं सौम्यं लागुडञ्च चतुर्विधम्।
तन्त्रभेदः समुद्दिष्टः संकरं न समाचरेत्॥

इस स्थलमें सौम्यशब्दसे सोमसिद्धान्त अथवा कापालिक मत समझना चाहिये। इसके अनुसार लागुड और पाशुपत पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय थे।

† वसिष्ठके पुत्र और गोपायनके गुरु शक्ति शैव सम्प्रदायके, क्राथेश्वरके गुरु आपस्तम्ब कालदमन सम्प्रदायके, और शूद्रजातीय अरुणोदरके गुरु धनद अथवा कुबेर कापालिक सम्प्रदायके उपदेष्टा थे। महापुराणोंमें कुबेर महाव्रती भी कहे गये हैं।

चार्य, केशवकाश्मीरी आदिके ग्रन्थोंमें मिलता है। भासर्वज्ञकी गणकारिकाकी बात पहले ही कही गई है। इसके ऊपर रत्नटीका नामसे प्रसिद्ध एक टीका भी है। इस टीकाके रचयिताने सत्कार्यविचार नामक पाशुपतशास्त्रका एक और ग्रन्थ बनाया था। इस सम्प्रदायके क्रियाकलापोंका विवरण संस्कारकारिका नामक ग्रन्थमें है। शिवानन्दकृत योगचिन्तामणि नामक ग्रन्थमें नकुलीश-योगपरायण नामक एक पाशुपत ग्रन्थका उल्लेख मिलता है।

यद्यपि अन्यान्य शैव सम्प्रदायोंके सदृश इस सम्प्रदायके प्रवर्तक भी भगवान् शङ्कर ही हैं और ऋषि लोग ही इसके भी प्रचारक थे, तथापि ऐतिहासिक समयमें भृगुकच्छके निकट करबन नामक स्थाननिवासी * नकुलीश नामक किसी एक व्यक्तिने इस उच्छिन्नप्राय सम्प्रदायका पुनरुद्धार किया था, ऐसी प्रसिद्धि है। नकुलीशशब्द कहीं कहीं लकुलीश, लगुड़ीश आदि रूपोंमें भी दृष्टिगोचर होता है। इस सम्प्रदायके उपासक अबतक भी लगुड़धारण करते हैं †। वायुपुराणके अनुसार श्रीकृष्णने जिस समय वासुदेवरूपमें अवतार लिया था ठीक उसी समय शिवजी कायावरोहण नामक स्थानमें नकुलीश-रूपमें आविर्भूत हुए थे। श्मशानस्थित एक शवमें उनका आविर्भाव हुआ था—भगवत्-शक्तिके संचारसे शव चेतन होकर उठ बैठा और पाशुपत धर्मके प्रचारमें तत्पर हुआ, ऐसी किंवदन्ती है। नकुलीशके चार शिष्य थे—कुशिक, ‡ गार्ग्य,

* इस स्थानका संस्कृत नाम कायावरोहण है। शिवजी इसी स्थानमें अवतीर्ण हुए थे इसलिए इसका इस प्रकार नाम पड़ा। प्रसिद्धि है कि शिवजी लगुड़धारी नररूपमें यहाँ अवतीर्ण हुए थे। यहांपर अब भी लकुलीश का एक मन्दिर है। शिवपुराणके अनुसार (सनत्कुमार-संहिता ३१।१२) कायावरोहणके लकुली शिवजीकी अड़सठ मूर्तियोंमें अन्यतम हैं।

† विश्वकर्मावतार नामक वास्तुशास्त्रमें लकुलीशका ध्यान इस प्रकार मिलता है—"लकुलीश-मूर्ध्वमेढ़ूं पद्मासनसुसंस्थितम्। दक्षिणे मातुलिङ्गं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम्॥" बहुतसे शैव-मन्दिरोंके द्वारमें लकुलीशमूर्ति दिखाई देती है—उनका मस्तक केशोंसे ढका हुआ रहता है दाहिने हाथमें बीजपूरके फल और बाएँमें दण्ड। समस्त राजपूताना, गुजरात, मालव, बङ्गदेश, दक्षिणापथ आदि नाना देशोंमें लकुलीशकी मूर्ति देख पड़ती है। एकलिङ्ग, मैनाल, तिलिस्मा, बाडोणी आदि स्थानोंके शिवमन्दिर इसी सम्प्रदायके हैं (द्रष्टव्य-गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझाकृत उदयपुरराज्यका इतिहास, पृ० ११०४-११०५)।

‡ उदयपुरसे १३ मील उत्तरमें एकलिङ्गका मठाध्यक्ष इसी सम्प्रदायका है। बप्पारावलके गुरु नाथ हारीतराशि एकलिङ्ग मन्दिरके महन्त थे। एकलिङ्गजीके मन्दिरके दक्षिणमें लकुलीशका मन्दिर संवत् १०२८ अर्थात् ९७१ खीष्टाब्दमें बनाया गया था।

मित्र और कौरूष्य। ये सभी पाशुपत योगका अभ्यास करते थे और देहमें धूलि और भस्म रमाये रहते थे। चिन्त्रालेखमें उक्त चार शिष्योंका उल्लेख है, किन्तु उसमें तृतीयका नाम मित्रके बदले मैत्रेय लिखा है।

लकुलीशका आविर्भाव ऐतिहासिक दृष्टिसे किस शताब्दीमें हुआ था इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ है। फरकूहरका मत है कि नकुलीश सत्य ही किसी समयमें जीवित थे—महाभारतकाल और वायुपुराणकालके (३०० ख्रीο से ४०० खीष्टाब्दके) मध्यवर्ती कालमें किसी समय उनका आविर्भाव हुआ था। फ्लीटने प्रमाणित किया है कि कुशनराज हुबेष्ककी मुद्राओंमें जो मुद्गरहस्त शिवजीकी मूर्ति दीख पड़ती है, वह नकुलीशकी ही मूर्ति है (J. R. A. S., 1907, p.419) *।

विशेषरूपसे पर्यालोचन करनेसे प्रतीत होता है कि प्राचीन पाशुपत सम्प्रदायसे किसी किसी अंशमें इस (नकुलीश) सम्प्रदायका पार्थक्य था, क्योंकि यामुनाचार्यने आगमप्रामाण्यमें दो वचन उद्धृत किये हैं (पृ० २६, ४६)। उनमें पाशुपतसे लकुलीशके पार्थक्यका उल्लेख है। पहले श्लोकमें स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि वे सब तन्त्र परस्पर पृथक् हैं। इनमें से एकको दूसरेसे मिलाना नहीं चाहिये—'तन्त्रभेदः समुद्दिष्टः सङ्करं न समाचरेत्'। दूसरे श्लोकमें पाशुपतसे कालामुखके पार्थक्यका उल्लेख है। यह कालामुखसम्प्रदाय लागुड़का ही नामान्तर प्रतीत होता है—क्योंकि आगमप्रमाण्यसे ही मालूम होता है कि ये लोग लगुड़ धारण करते थे और कपालपात्रमें भोजन करते थे। कापालिक

---

* लकुलीश ऐतिहासिक पुरुष थे यह किसी-किसी पण्डितका मत है, किन्तु आगमशास्त्रके इतिहासका पर्यालोचन करनेसे प्रतीत होता है कि लाकुलमत भी अति प्राचीन है। प्रसिद्धि है कि नौ करोड़ आगम ग्रन्थोंका क्रमशः ह्रास हुआ था। मूल प्रवर्तक भैरवने जब इस आगमका प्रवर्त्तन किया था तब ग्रन्थोंका उच्छेद न होनेके कारण सभी—नौ करोड़-ग्रन्थ विद्यमान थे। किन्तु भैरवीके समयमें १ करोड़ ग्रन्थोंका, तदन्तर स्वच्छन्दके समयमें और एक करोड़ ग्रन्थोंका और लाकुलके समयमें और एक करोड़ ग्रन्थोंका लोप हो गया था अर्थात् लाकुलके समयमें छः करोड़ ग्रन्थ विद्यमान थे। इसके बाद अनुराट्, गहनेश, अब्जज, शक्रगुरु तक और भी ग्रन्थसंख्याका ह्रास हुआ था। तन्त्रशास्त्रके अनुसार ये सब दिव्य गुरुओंके नाम हैं। सिद्ध अथवा मनुष्य गुरुओंके नाम नहीं हैं। अत एव इस दृष्टिसे लाकुल मत किसी ऐतिहासिक व्यक्ति विशेषका मत नहीं है, यही सिद्ध होता है (द्रष्टव्य—K. C. Pandey, Abhinavagupta, p. 70)

सम्प्रदायसे भी इन लोगोंका कुछ सादृश्य था *। असली बात यह है कि कालामुख अथवा लागुड़, कापालिक और पाशुपत—इन तीन सम्प्रदायोंमें परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध था। श्रीभाष्यमें रामानुजाचार्यने शैव, पाशुपत, कापाल और कालामुखके भेदसे चार प्रकारके शैव सम्प्रदायका उल्लेख किया है। यहांपर भी कालामुख शब्दसे लागुड़ अथवा लकुलीश सम्प्रदाय ही समझना चाहिए।

संभव है कि प्राचीन पाशुपत मत ही धीरे धीरे दो या अधिक विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त हुआ हो। कापालिक और लकुलीश सम्प्रदायके दार्शनिक मतमें कुछ भेद था, इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है †।

पाशुपतमत अवैदिक था यह एक प्रकारसे निश्चित ही है। महिम्नःस्तोत्रके 'त्रयी साख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति' इत्यादि श्लोकमें त्रयीपदसे वैदिक मार्गका ग्रहण होनेपर सांख्य, योग, पाशुपत और वैष्णव मत वेदबाह्य ही मानने पड़ते हैं। तर्कपादमें भी ये मत वस्तुतः वेदबाह्यरूपमें ही प्रतिपादित हुए हैं ‡। कूर्मपुराणमें पाशुपतमत स्पष्टरूपसे वेदबाह्य कहा गया है, किन्तु अप्पयदीक्षितने श्रीकण्ठभाष्यकी शिवार्कमणिदीपिका नामक टीका-

---

* कूर्मपुराणमें वाम, पाशुपत, सोम, लाङ्गल और भैरव इन सब वेदबाह्य सम्प्रदायों (मतों) का उल्लेख है। वहां भी पाशुपतसे लाङ्गल या लागुड़का पृथक् निर्देश है। स्कन्द-पुराणकी सूतसंहितामें (२२।३ यज्ञवैभवखण्ड) भी कापाल, लाकुल, पाशुपत और सोम मतका पृथक्रूपसे उल्लेख किया गया है—"कापालं लाकुलं चैव तयोर्भेदान् द्विजर्षभ। तथा पाशुपतं सोमं भैरवप्रमुखागमान् ॥"

† अभिनवगुप्तने तन्त्रालोकमें (आ० ३७) पाशुपत मतको अपने अद्वैत मतके अनन्तर ही उच्च स्थान दिया है। उन्होंने कहा है कि यह मोक्षप्रापक मार्ग है। उनकी दृष्टिसे पाशुपत मार्गसे अपना मार्ग इसी अंशमें श्रेष्ठ है कि वह भोग और मोक्ष दोनोंका प्रापक है और पाशुपत मार्ग केवल मोक्षप्रापक ही है। अभिनवका अपना सिद्धान्त अद्वैतपरक है, परन्तु पाशुपत मत द्वैताद्वैतपरक है और अष्टादश आगममूलक है। अभिनवगुप्तने द्वैतवादी सिद्धान्ती शैवोंके मतका खण्डन किया है, (द्रष्टव्य K. C. Pandey Abhinavagupta Page 104)

‡ महिम्नः स्तोत्रमें त्रयी, सांख्य, योग, पाशुपत और वैष्णव मत—इस प्रकार पांच तरहके प्रस्थानोंका निर्देश है। महाभारतके शान्तिपर्वमें वैशम्पायनने त्रयी, सांख्य, योग, पाशुपत और सात्वत (वैष्णव अथवा पाञ्चरात्र) इस तरह पांच प्रकारके ज्ञानका उल्लेख किया है। अहिर्बुध्न्यसंहिताके १२ वें अध्यायमें भी ५ सम्प्रदायोंका वर्णन मिलता है। अहिर्बुध्न्य-संहिताके मतसे (११ अ०) अपान्तरतपा (वाच्यायन) ने तीनों वेदोंका, कपिलने सांख्यका, हिरण्यगर्भने योगका, शिव अथवा अहिर्बुध्न्यने पाशुपतका तथा नारायणने पाञ्चरात्रका उद्धार किया था।

में (२।२।२८) कहा है कि पाशुपतमत वैदिक और अवैदिक भेदसे दो प्रकारका है। उनमें वैदिकमत प्रमाण है और अवैदिकमत मोहशास्त्रस्वरूप एवं अप्रमाण है—"कूर्मपुराणे..प्रमाणभूतं वैदिकं पाशुपतमुक्त्वा 'वामं पाशुपतं सोम'मिति मोहशास्त्ररूपमवैदिकं पाशुपतमन्यत् संकीर्तितम्।" प्राचीनकालमें उच्चकोटिके लोग भी कहीं-कहीं वेद और आगमको समान दृष्टिसे देखते थे, ऐसा प्रमाण भी मिलता है, उन लोगोंका मत यह है कि वेद और शिवागम दोनों ही एककर्तृक हैं—दोनोंके निर्माता एक परमेश्वर ही हैं। उन लोगोंके मतमें शिवागम दो प्रकार का है—१-त्रैवर्णिकविषय, इसीका नामान्तर वेद है, और २—निर्विशेष सर्ववर्णविषयक, उसका नाम आगम है। इस प्रसङ्गमें श्रीकण्ठाचार्यने कहा है—(२।२।३७) "वयं तु वेदशिवागमयोर्भेदं न पश्यामः। वेदेऽपि शिवागम इति व्यवहारो युक्तः, तस्य तत्कर्तृकत्वात्। अतः शिवागमो द्विविधः—त्रैवर्णिकविषयः सर्वविषयश्चेति। वेदास्त्रैवर्णिकविषयाः सर्वविषयश्चान्यः, उभयोरेक एव शिवः कर्ता, अतः कर्तृसामान्यात् उभयमप्येकार्थपरं प्रमाणमेव।"

पाशुपत लोग पांच पदार्थ मानते हैं—कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त। जो कुछ भी परतन्त्र है, वह कार्य है। कार्य तीन प्रकारका है १—विद्या, २—कला और ३—पशु। विद्या पशुका गुण है, विद्या परतन्त्र तथा अचेतन है। निखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाला साक्षात् महेश्वर कारण है। वह वस्तुतः एक होनेपर भी गुणगत तथा कर्मगत भेदसे विविधरूपसे कहा जाता है। चित्त द्वारा आत्मा और ईश्वरके सम्बन्धका जो हेतु है, उसे योग कहते हैं। योग दो प्रकारका है—एक क्रियात्मक और दूसरा क्रियाका उपरम—निरोधात्मक है। जिस व्यापारसे धर्म और अधर्मकी उत्पत्ति होती है, वह विधि है। प्रधानविधि और गुणविधिके भेदसे विधि भी दो प्रकार की है। भस्मस्नान, शयन, उपहार, जप और प्रदक्षिण—ये व्रत ही प्रधानविधि कहे जाते हैं। क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृङ्गारण, वित्कलन और अविद्भाषण ये सब गुणविधियाँ द्वार हैं। अनुस्नान, भैक्ष्य, उच्छिष्ट अशन, निर्माल्यधारण आदि व्यापार गुणविधिके अन्तर्गत हैं। दुःखान्त भी दो प्रकारका है—१-समस्तदुःखनिवृत्ति और २-परमैश्वर्यप्राप्ति। लेकिन पाशुपत प्रथम प्रकारको उच्चकोटिका दुःखान्त नहीं मानते। वे कहते हैं कि

पारमेश्वर्यप्राप्ति ही दुःखान्तका यथार्थ स्वरूप है। किन्तु जब तक पशुत्वकी निवृत्ति नहीं होती तब तक परमेश्वरसे तादात्म्यलाभ नहीं हो सकता। इन लोगोंके मतमें ईश्वर निरपेक्ष निमित्तकारण है। सिद्धान्ती शैव लोग ईश्वरके निमित्तत्वको कर्माधीन मानते हैं, परन्तु पाशुपतोंका मत है कि परम स्वातन्त्र्य ही ईश्वरका स्वभाव है। इसीलिए ईश्वरमें किसी प्रकार भी कर्मसापेक्ष्य नहीं माना जा सकता।

पाशुपतके सदृश पाञ्चरात्र * मतको भी आचार्य शङ्करने अवैदिक † ही

* ब्रह्मसूत्रके (२।२।४२–४५) अधिकरणमें शङ्कराचार्यने भागवत और पाञ्चरात्र शब्दका पर्यायवाची रूपमें प्रयोग किया है। ४२वें सूत्रके भाष्यमें उन्होंने 'तत्र भागवता मन्यन्ते' कहकर और परवर्ती सूत्रमें 'वर्णयन्ति च भागवताः' कहकर भागवतसिद्धान्तका ही उपन्यास किया है। परन्तु ४४वें सूत्रमें 'न च पञ्चरात्रसिद्धान्तिभिः' कहकर उसी सिद्धान्तका उल्लेख किया है। आगमप्रामाण्यमें यामुनमुनिने भी पाञ्चरात्रमतका भागवत मतसे अभिन्नरूपसे वर्णन किया है। यथा—

'तदिह भागवतं गतमत्सरा
मतमिदं विमृशन्तु विपश्चितः।' इत्यादि।

परन्तु रामकृष्णगोपाल भण्डारकर प्रभृति पण्डितोंका मत है कि प्राचीन समयमें भागवत सम्प्रदाय तथा पाञ्चरात्र सम्प्रदाय दोनों परस्पर भिन्न थे लेकिन उत्तरकालमें सम्मिलित हो गये। जीव गोस्वामी आदिका मत भी प्रायः ऐसा ही प्रतीत होता है।

† शङ्करमतमें पाञ्चरात्र सिद्धान्तका कुछ अंश वैदिकसिद्धान्तके अनुकूल माना गया है, उसको आचार्य शङ्कर उपादेय मानते हैं। जैसे कि (१) परमात्माका केवल अपनी इच्छासे अनेक रूपधारण करना (जो चतुर्व्यूहवादका मूल है) और (२) दीर्घकालपर्यन्त अनन्यचित्त होकर भगवान्का भजन करनेसे क्लेशनिवृत्तिपूर्वक भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्षलाभ होता है। पाञ्चरात्रियोंका अभिगमन (काय, वाक्य तथा चित्तको अवहित करके देवगृहमें गमन करना), उपादान (पूजाद्रव्यका अर्जन अथवा संग्रह करना), इज्या, स्वाध्याय (अष्टाक्षर आदि मन्त्रोंका जप) और योग (ध्यान) ये पाँच व्यापार ईश्वर आराधनके ही स्वरूपके अन्तर्गत है। ईश्वरप्रणिधान वैदिकसिद्धान्तके विरुद्ध नहीं है। किन्तु पाञ्चरात्रसिद्धान्तका कुछ अंश वेदविरुद्ध है, अत एव शङ्कराचार्यने उसका ग्रहण नहीं किया। जैसा कि शङ्करने कहा है—पाञ्चरात्र मतमें वासुदेव नामके प्रथम व्यूहसे सकर्षण नामक व्यूहकी उत्पत्ति होती है। वासुदेव परमात्माका तथा संकर्षण जीवात्माका नामान्तर है। इस कथनसे सिद्ध हुआ कि पाञ्चरात्र मतमें परमात्मासे जीवात्माकी उत्पत्ति होती है। परन्तु वैदिक सिद्धान्तके अनुसार जीव नित्य है, जीवकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। अत एव जीवोत्पत्तिवाद अवैदिक होनेके कारण शिष्टोंके ग्रहण योग्य नहीं है। शङ्कराचार्यने भागवत तथा पाञ्चरात्र मतका जैसा उपन्यास किया है उससे ज्ञात होता है कि इस मतके अनुसार ईश्वर जगत्का प्रकृति तथा अधिष्ठाता अर्थात् उपादान तथा निमित्त कारण है। ईश्वर ही निरञ्जन, ज्ञानस्वरूप

पाञ्चरात्र मत अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि महाभारतशान्तिपर्वमें इस मतका उल्लेख है। यह मत सर्वथा वैदिक रहा या नहीं यह नहीं कह सकते, किसी-किसी प्रसंगमें यह वेदका सार रूप कहा गया है। ईश्वर संहितामें लिखा है कि द्वापरयुगके अन्तमें और कलियुगके आरम्भमें महामुनि शाण्डिल्यने तोताद्रि-

---

है, वह यह है—'चतुर्षु वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य इदं शास्त्रमधिगतवान्' (ब्र० सू० २।२।४५)। रत्नप्रभाकारने इस प्रकारके और वचन भी दिखलाये हैं। यथा—'एकस्यापि तन्त्राक्षरस्याध्येता चतुर्वेदिभ्योऽधिकः'। आनन्दगिरिने इसी प्रसंङ्गमें उपर्युक्त वचनसे मिलते-जुलते एक दूसरे वचनका उद्धार किया है। यथा—'स्वाध्यायमात्राध्येतुर्विशिष्यते भागवत-शास्त्राक्षरमात्राध्येता।' ये सब वचन कहांसे उद्धृत किये गये हैं, इसका पता नहीं चलता, किन्तु पाञ्चरात्रके विभिन्न स्थलोंमें वेदके अपकर्षका ख्यापन देख पड़ता है। अहिर्बुध्न्य-संहितामें (अ० ४५।१८) लिखा है कि राजा कुशध्वजने अपने गुरूसे परा और अपरा दोनों विद्याएँ प्राप्त कीं थीं और साक्षात् अग्निके सदृश परा विद्यासे उसके कर्म नष्ट हुए थे। उसो ग्रन्थके ५वें अध्यायमें वेदादि अपर विद्या और पञ्चरात्र परमज्ञानरूप कहे गये हैं। इस कथनसे यही सिद्ध होता है कि इस मतमें वैदिक ज्ञानसे कर्मनिवृत्ति नहीं हो सकती है। कोई कोई लोग कहते हैं कि गीता भी एकायनशास्त्रके अन्तर्गत है, अत एव पञ्चरात्रके सिद्धान्तसे उसका सिद्धान्त भिन्न नहीं है। 'यामिमां पुष्पितां वाचम्' इत्यादि स्थलमें जो वेदकी अथवा वैदिक कर्मोंकी निन्दाका आभास देख पड़ता है, उसे भी इसी प्रकार समझना चाहिये। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' गीताके इस वचनसे भी पञ्चरात्र अथवा एकायन-शास्त्रका मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रपत्ति अथवा शरणागति ही उपदिष्ट हुई है। किसी-किसीके मतमें सर्वधर्मत्यागका अर्थ नाना प्रकारके वैदिक कर्म आदिका ही त्याग समझना चाहिए। बिष्वक्सेनसंहितामें भगवान्के वचनरूपसे स्पष्ट ही लिखा है—'त्रयीमार्गेषु निष्णाताः फलवादे रमन्ति ते। देवादीनेव मन्वाना न च मां मेनिरे परम्।' यहाँपर त्रयीशब्दसे वेदान्त ही समझना चाहिए, क्योंकि उसी ग्रन्थमें 'वेदनिष्णात' तथा 'वेदान्तनिष्णात' इस प्रकार वेद और वेदान्तका परस्पर भेद दिखलाया गया है। छान्दोग्य उपनिषत्के भूमविद्याप्रसङ्गमें नारदसनत्कुमार संवादमें भी (७।१) ऐसा ही प्रतीत होता है। वहांपर सम्पूर्ण वेद और समस्त शास्त्रोंका अध्ययन करनेके अनन्तर भी नारदने यही कहा है कि मुझे मन्त्रज्ञान ही प्राप्त हुआ है, आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु आत्मज्ञानके बिना दुःखनिवृत्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः यह निन्दा नहीं है। रामानुजने भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान किया है। शङ्करके इस वचनका मूल क्या है यह कहना कठिन है। पाञ्चरात्रसंहिताओंमें—कपिञ्जल, विष्णु और हयशीर्षसंहिताओंमें—एवं अग्निपुराणमें भी एक शाण्डिल्यसंहिताका उल्लेख है। दूसरी भी एक शाण्डिल्यसंहिता है, जो इस समय बनारस संस्कृतकालेजकी संस्कृत-ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुई है। भक्तिसूत्रकार शाण्डिल्य भी पाञ्चरात्र सम्प्रदायके ही हैं। यामुनाचार्यने आगमप्रामाण्यमें शाण्डिल्यसंहिताका एक वचन उद्धृत किया है, परन्तु वह पूर्वोक्त शाण्डिल्यसंहिताका है अथवा नहीं, यह कहना कठिन है।

शिखरमें समाहितचित्त होकर, कठिन तपस्या करके, साक्षात् संकर्षणसे एकायन नामक वेद प्राप्त किया था और सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन और मौञ्जायनको उसकी शिक्षा दी थी। मुमुक्षुके लिए यही विद्या एकमात्र मार्ग है, इसी लिए इसका नाम एकायन पड़ा। संसारी जीवोंका उपकार करनेके लिए मूल वेदका अनुसरण करते हुए सात्वत, पौष्कर, जयाख्य आदि एकायन शास्त्र बनाये गये थे। ईश्वरसंहिताके ही दूसरे प्रकरणमें कहा गया है कि शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्जायन, कौशिक और भरद्वाज नामक योगियोंने तोताद्रिमें तपस्या करके एकायन नामसे प्रसिद्ध रहस्याम्नायसंज्ञक आदि वेद प्राप्त किया था। पाञ्चरात्रशब्दकी व्युत्पत्ति विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारसे की गई है, यहांपर उसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है। पाद्म तथा ईश्वरसंहिताके अनुसार पाञ्चरात्रशास्त्र चार विभागोंमें विभक्त हैं— १ आगमसिद्धान्त, २ मन्त्रसिद्धान्त, ३ तन्त्रसिद्धान्त और ४ तन्त्रान्तरसिद्धान्त। पाञ्चरात्रमें कितनी संहिताएँ है यह ठीक-ठीक कहना कठिन है, कपिञ्जलसंहिताके अनुसार पाञ्चरात्रकी संहिताओंकी संख्या १०६ है, पाद्मसंहिताके अनुसार ११२, विष्णुतन्त्रके अनुसार १४१, हयशीर्षसंहिताके मतसे ३४ और अग्निपुराण (अध्याय ३९) के अनुसार २५ संहिताएँ होती हैं। नारदपाञ्चरात्रमें केवल ७ ही संहिताओंका नामनिर्देश है। सब मिलाकर और भी कुछ नामोंको उनमें जोड़कर Dr. Schrader ने एक सूची बनाई है*।

प्राचीन अद्वैतवादके साथ शङ्करके अद्वैतवादका सम्बन्ध

अद्वैतवाद भारतवर्षमें अति प्राचीनकालसे ही प्रचलित है। उपनिषदोंमें यत्र तत्र अद्वैतपरक श्रुतियां देख पड़ती है। मन्त्रसंहिताओंमें अद्वैतमत-प्रकाशनका अवसर न रहनेपर भी जहां तहां प्रसंगतः उसका स्पष्ट आभास दृष्टिगोचर होता है। महाभारत आदि ग्रन्थोंमें अन्यान्य मतोंके सदृश अद्वैतवादका भी परिचय मिलता है। प्राचीन वेदान्त सूत्रकारोंमें कोई-कोई अद्वैतवादी थे यह सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। इसके अनन्तर बौद्धमतमें माध्यमिक तथा योगाचारगण अद्वैतवादी थे। इसी कारण बुद्धका एक नाम भी अद्वयवादी पड़ा था।

* द्रष्टव्य—F. O. Schrader, Introduction to the Pancharatra, pp. 5, 6–12.

वैयाकरण, शाक्त, शैव—ये सभी अद्वैतवादको मानते थे। शङ्करके पहले वेदान्तमें भी अद्वैतवाद अपरिचित नहीं था। मण्डनमिश्रने ब्रह्मसिद्धिमें अद्वैतवादका ही समर्थन किया है। दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने आप्तमीमांसामें (श्लोक २४) अद्वैतपक्षका उल्लेख किया है—

"अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुद्ध्यते।
कारकाणां क्रिययोश्च नैकं स्वस्मात् प्रजायते॥"

समन्तभद्र शङ्करसे प्राचीन हैं। इससे प्रतीत होता है कि अद्वैतवाद उनसे (शङ्करसे) प्राचीन था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें (३२८–३२९) प्राचीन अद्वैतमतका वर्णन किया है। कमलशीलने इन लोगोंका—'अद्वैतदर्शनावलम्बिनश्चौपनिषदिकाः' कहकर उल्लेख किया है। शान्तरक्षितका वचन यह है—

"नित्यज्ञानविवर्तोऽयं क्षितितेजोजलादिकम्।
आत्मा तदात्मकश्चेति संगिरन्तेऽपरे पुनः॥
ग्राह्यलक्षणसंयुक्तं न किञ्चिदिह विद्यते।
विज्ञानपरिणामोऽयं तस्मात् सर्वः समीक्षते॥*

कमलशीलने इन कारिकाओंकी व्याख्या करते हुए कहा है कि क्षिति आदि प्रपञ्चविज्ञान प्रतिभास स्वरूप है। शान्तरक्षितके वचनसे प्रतीत होता है कि उनके मतसे विवर्त और परिणाम ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं, क्योंकि उन्होंने प्रथम श्लोकमें क्षिति आदिको नित्यज्ञानका विवर्त कहकर दूसरे श्लोकमें उन्हें विज्ञानपरिणाम कहा है। इत मतमें आत्मा नित्यज्ञानरूप है और क्षिति आदि जगत् इसीका परिणाम अथवा विवर्त है। भवभूति भी इस प्राचीन विवर्तवादको जानते थे। उत्तररामचरितमें उन्होंने कहा है—'ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः'। इस वचनसे ज्ञात होता है कि विवर्त ब्रह्ममें लीन होता है और ब्रह्मसे ही आविर्भूत होता है। उनकी दृष्टिमें विवर्त और परिणाम दोनों ही एकार्थक हैं। 'एको रसः करुण एव विवर्तभेदात्' इत्यादि श्लोकसे भी सिद्ध होता है कि विवर्तशब्दका नवीनवेदान्तसम्मत अर्थ उन्हें ज्ञात

* प्रज्ञाकरमतिने शान्तिदेवकृत बोधिचर्यावतारकी स्वरचित पञ्जिकाटीकामें ये श्लोक उद्धृत किये हैं। परन्तु उसमें कुछ पाठभेद है।

नहीं था। कुमारिलभट्टने भी श्लोकवार्तिकमें वेदान्तके अद्वैतवादका उल्लेख किया है। योगवासिष्ठरामायणका रचनाकाल परिज्ञात नहीं है। यदि इसका रचना काल शङ्करसे पूर्व माना जाय (जैसा कि डा० भीखनलाल आत्रेयने प्रतिपादन करनेका विशेषरूपसे प्रयत्न किया है) तो उसके अद्वैतवादको भी प्राचीन अद्वैतवादका ही प्रकारभेद मानना होगा।

परन्तु ये सब अद्वैतवाद एक ही प्रकारके नहीं हैं। माध्यमिकों का शून्याँद्वयवाद, योगाचारोंका विज्ञानाद्वयवाद, शाक्तोंका शक्त्यद्वयवाद, वैयाकरणों-का और मण्डनसम्मत प्राचीन वेदान्तियोंका शब्दाद्वयवाद—यद्यपि ये सब अद्वैतवाद ही हैं, तथापि इनमें परस्पर कुछ न कुछ वैशिष्ट्य है। शङ्कर तथा शङ्करके परमगुरु आचार्य गौडपाद द्वारा प्रचारित अद्वैत इन सब अद्वैतवादोंसे किसी किसी अंशमें विलक्षण है। पूर्वोक्त मतोंमें से किसी मतका प्रभाव शङ्कर मतपर पड़ा है या नहीं, यह कहना कठिन है। परन्तु अन्य मतका प्रभाव माननेपर भी यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि शङ्करमतका अन्य मतों की अपेक्षा असाधारण वैशिष्ट्य है।

किसी किसी पण्डितका विश्वास है कि शङ्कराचार्यने बौद्धमतका अनुसरण करते हुए ही बौद्धमतका खण्डन किया है। 'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च' इत्यादि पौराणिक वचन इसी मतके परिपोषक हैं। इन लोगोंका कहना है कि गौड़पादकी कारिकाका विशेषरूपसे पर्यालोचन करनेसे ज्ञात होता है कि यद्यपि यह ग्रन्थ वस्तुतः औपनिषद ब्रह्मवाद स्थापन करनेके लिए ही प्रवृत्त हुआ था, तथापि भाव तथा भाषामें यह आदिसे अन्त तक माध्यमिक दर्शनके प्रभावसे भरा पड़ा है। इस ग्रन्थमें आत्माके विषयमें अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति, नास्ति नास्ति, इन चार कोटियोंका उल्लेख है—

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्ति नास्तीति वा पुनः।
चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येष बालिशः॥
कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृतः।
भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्वदृक्॥

इनका सारांश यह है कि आत्मा सत्, असत्, सदसदुभयात्मक तथा सदसद्विलक्षण—इन चार कोटियोंमें से किसी भी कोटिसे स्पृष्ट नहीं है। इस प्रकार चतुष्कोटिविनिर्मुक्त आत्माका जिन्होंने साक्षात्कार किया हो, वे ही

सर्वदर्शी अथवा सर्वज्ञ कहलाने योग्य हैं। गौड़पादसे बहुत पहले नागार्जुनने भी माध्यमिककारिकामें यही बात कही थी—

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥

गौड़पादकी उक्ति नागार्जुनके इस वचनकी प्रतिध्वनिमात्र है। नागार्जुन और गौड़पाद दोनों ही परमार्थतत्त्वको चतुष्कोटिविनिर्मुक्त कहते हैं। इसीका अनुसरण करते हुए नैषधकार श्रीहर्षने भी कहा है—

साम्युं प्रयच्छति न पक्षचतुष्टये तां तल्लाभशंसिनि न पञ्चमकोटिमात्रे।
श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मतानामद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः॥
(नै० १३।३६)

अद्वैतशिरोमणि खण्डनखण्डखाद्यकार श्रीहर्षने अपने नैषधचरितमें (२१।८८) बुद्धका भी विधूतकोटिचतुष्क तथा अद्वयवादी रूपसे वर्णन किया है †। इस वर्णनके अनुसार शून्यवादीका शून्य अथवा तत्त्व और आचार्य गौडपादका आत्मा प्रायः एक ही प्रकारका है। इन समालोचकोंका यह भी कथन है कि गौडपादका अजातवाद भी नागार्जुन रचित माध्यमिक-कारिकामूलक ही है। नागार्जुनने कहा है—

न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यां नाप्यहेतुतः।
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावाः क्वचन केचन॥
(म० का० १।७)

(द्रष्टव्य—मध्यमकवृत्ति, पृ० १२, Bibliotheca Buddhica में Professer Poussin का संस्करण)। गौड़पादने अलातशान्ति प्रकरणमें कहा है—

'स्वतो वा परतो वापि न किञ्चिद्वस्तु जायते।
सदसत् सदसद्वापि न किञ्चिद् वस्तु जायते॥'

माध्यमिकमतमें परमार्थतत्त्व जैसा मन, वाक्य और प्रपञ्चके अतीत है शङ्करमत भी इस अंशमें ठीक वैसा ही है। सब वस्तुओंका मायिकत्व और स्वाप्नत्व दोनों दर्शनोंमें समानरूपसे माना गया है। सत्ताका पारमार्थिक तथा

---

† एकचित्ततितिरद्वयवादिन त्रयी परिचितोऽथ बुद्धस्त्वम्।
पाहि मां विधुतकोटिचतुष्कः पञ्चवाणविजयी षडभिज्ञः॥
(नैषध, च. २१।८८)

व्यावहारिकरूपसे विभाग, जो शङ्करदर्शनमें मिलता है, वह बौद्धदर्शनके आधारपर ही प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। बौद्धोंका परमार्थसत्ता तथा व्यावहारिक सत्ता, इस प्रकार सत्ताभेद अति प्राचीन पालीसाहित्यमें ही मिलता है। यह भेद और किसी दर्शनमें नहीं है। इससे अतिरिक्त माण्डूक्य-कारिकामें ऐसे पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग मिलता है, जिनका उल्लेख केवल बौद्धदर्शन-ग्रन्थोंमें ही है। इन्ही सब विषयोंका सूक्ष्मरूपसे पर्यालोचन करके आधुनिक पण्डितोंने सिद्धान्त किया है कि शङ्करदर्शन बौद्ध शून्यवादका औपनिषद संस्करणमात्र है।

पक्षान्तरमें किसी किसीका यह मत है कि अतिप्राचीन शिवाद्वयवादका अवलम्बन करके शङ्कराचार्यने अपना मत-स्थापन किया था। प्रसिद्धि है कि उन्होंने सूतसंहिताका अष्टादश वार आलोचन करके शारीरकभाष्यकी रचना की थी—

तामष्टादशधालोच्य शङ्करः सूतसंहिताम्।
चक्रे शारीरकं भाष्यं सर्ववेदान्तनिर्णयम्॥

सूतसंहिता प्राचीन शिवाद्वैत-सम्प्रदायका ग्रन्थ है। इसके भाष्यकार माधवमन्त्री सुप्रसिद्ध शैवाचार्य क्रियाशक्ति पण्डितके शिष्य थे। शङ्करके दक्षिणामूर्तिस्तोत्र और सुरेश्वरकृत उसके वार्तिकके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि शिवागमके साथ शङ्करका विशेष परिचय था, अत एव शङ्करका अद्वैत शिवागमके प्रभावसे प्रभावित होना कोई आश्चर्यजनक वात नहीं है *।

इन सब अद्वैत सिद्धान्तोंका ज्ञान शङ्कर को अवश्य था, और यह भी संभव है कि इनमें से किसी किसीके सिद्धान्तका प्रभाव भी थोड़ा बहुत उनपर पड़ा हो। किन्तु शङ्करने इनमें से किसी मतका अवलम्बन करके अपने अद्वैत-वादका प्रचार किया, यह मानना किसी प्रकार भी संगत नहीं हो सकता।

* 'Is the Advaita of Shankar Buddhism in disquise' नामक लेखमें (Quarterly Journal of Mythic Society, Vol. 24, No. 1–2, July-October, 1933) यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि शङ्करके अद्वैतवादका आधार बौद्धोंका विज्ञानवाद या शून्यवाद नहीं है, किन्तु अति प्राचीन अद्वैतवाद है।

शङ्करके सदृश महाज्ञानी तथा महायोगी पुरुष ऐसा क्यों करने लगें ? देशमें जिस समयके वातावरणमें जिस प्रकारके भावों तथा पारिभाषिक शब्दों की व्याप्ति रहती है, उस समय बनाये गये ग्रन्थोंमें तथा चिन्ताशील (विचारशील) व्यक्तियोंके चित्तमें उनका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है। यह वस्तुतः ज्ञानपूर्वक आदान-प्रदान व्यापार नहीं है * ।

यहांपर हम नाना प्रकारके अद्वैतका संक्षेपमें परिचय देनेका प्रयत्न करेंगे। इसे देखनेसे शङ्करमतके जानकार पाठक उन अनेक मतोंसे शङ्करमतका विवेचन कर सकेंगे।

बौद्धोंके अन्दर शून्यवाद तथा विज्ञानवाद—माध्यमिक और योगाचार सम्प्रदायोंके सिद्धान्त हैं। अद्वैतवाद इन दोनों वादोंका प्राणभूत है †। शून्यवाद प्राचीन मत है। नागार्जुन तथा उनके अनुगामी आर्यदेव आदि आचार्योंने प्रज्ञापारमिता आदि शास्त्रोंके आधारपर उसका प्रचार किया था। इन लोगोंका कथन है कि सद्, असद् आदि चार कोटियोंसे शून्य, निर्विकल्पक, निष्प्रपञ्च, आकाशके समान निर्लेप और असंग सत्य ही शून्यपदवाच्य है। वह अनुत्पन्न, अनिरुद्ध, अनुच्छेद, अशाश्वत इत्यादि विशेषणों द्वारा वर्णित होता है। वही पारमार्थिक सत्य है और बुद्धिका अगोचर है। सत्यका एक दूसरा भी स्वरूप है, वह बुद्धि अथवा संवृति नामसे परिचित है ‡। बुद्धिमात्र

---

* जिन्होंने व्यासदेवके पातञ्जलभाष्यका भली भांति अवलोकन किया है और बौद्ध-दार्शनिक ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया है, उन लोगोंकी दृष्टिमें दोनोंमें बहुत सादृश्य प्रतीत होता है। दृष्टान्तरूपमें हम भवप्रत्यय तथा उपायप्रत्यय इन दोनों स्थलोंमें प्रत्ययशब्दका, अनाभोगशब्दका, धर्ममेघशब्दका, भुवनज्ञानविषयक सूत्रके भाष्यमें वर्णित विभिन्न प्रकारके देवताओंकी संज्ञाओंका, परिणाम, ताप, संस्कार भेदसे त्रिविध दुःखोंके नामका, निर्माणचित्त तथा निर्माणकायका, उल्लेख कर सकते हैं।

† बोधिचित्तविवरणमें लिखा है कि बुद्धदेव शिष्योंकी योग्यताके अनुसार उन्हें उपदेश देते थे। जिसमें जैसी शक्ति देखते थे, उसे वैसा उपदेश देते थे; किन्तु उपदेशगत इस प्रकारका भेदभाव केवल आपाततः प्रतीत होता है, क्योंकि उपदेष्टाका तात्पर्य शून्याद्वय-सिद्धान्तमें ही था—"भिन्नाऽपि देशनाऽभिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा"। किंतु बोधिचित्तविवरण माध्यमिक सम्प्रदायका ग्रन्थ है। माध्यमिक लोग जिस भावसे इसे समझते हैं योगाचार लोग ठीक उसी अभिप्रायसे इसे नहीं मानते।

‡ आर्यसत्त्वावतार और पितापुत्रसमागममें, साक्षात् बुद्धदेवके वचनरूपमें पूर्वोक्त

हो विकल्पात्मक है और विकल्प अवस्तुग्राही होनेसे अविद्यात्मक है। अविद्या संवृतिका ही नामान्तर है। अत एव यह निश्चित है कि बुद्धिमें ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है जिससे वह पारमार्थिक सत्यका यथार्थरूपमें ग्रहण कर सके। यथार्थ बात यह है कि पारमार्थिक पदार्थ सांवृतिक ज्ञानका विषय ही नहीं हो सकता। जो पदार्थ सांवृतिक ज्ञानका विषय होता है वह परमार्थसे विलक्षण है। अविद्या या संवृतिका कहीं कहीं मोह अथवा विपर्यासरूपसे भी वर्णन मिलता है। आर्यशालिस्तम्बसूत्रमें यह तत्त्वसे अप्रतिपत्ति, मिथ्याप्रतिपत्ति तथा अज्ञान शब्दसे कही गई है। माध्यमिक लोग इस अविद्याके दो कार्य मानते है—१ स्वभावदर्शनका आवरण, २ असत्पदार्थस्वरूपका आरोपण।

"अभूतं ख्यापयत्यर्थं भूतमावृत्य वर्तते।
अविद्या जायमानेव कामलातङ्कवृत्तिवत् ॥"

यही अविद्याका वर्णन है *। संवृति दो प्रकारकी है—१ तथ्यसंवृति—प्रतीत्यसमुत्पन्न घट, पट आदि वस्तुओंका स्वरूप जिस समय अदुष्ट इन्द्रियोंसे उपलब्ध होता है, उस समय लौकिक दृष्टिसे वह सत्य माना जाता है, यही तथ्यसंवृति है। २ मिथ्यासंवृति—मायामरीचिका, प्रतिबिम्ब आदि प्रतीत्यजात होनेपर भी जब दुष्ट इन्द्रियोंसे उपलब्ध होते हैं तब लौकिक दृष्टिसे भी मिथ्या कहे जाते हैं, इसीका नाम मिथ्यासंवृति है। संवृति सत्यका स्वरूप लौकिकदृष्टिसे अवितथ अर्थात् सत्य ही है। परन्तु पारमार्थिक दृष्टिसे वह सत्य नहीं है। इसीलिए यद्यपि वह किसी प्रकार सत्य कहा गया है तथापि परमार्थ सत्य तथा तत्त्वमें उसका परिगणन नहीं होता। पारमार्थिक सत्य आर्यगण तथा योगियोंके लिए विसंवादशून्य सत्य है। इन दोनों सत्योंके आधारपर ही बुद्ध लोग जीवोंको

दो प्रकारके सत्यका वर्णन मिलता है। उनमेंसे प्रथममें लिखा है कि जो परसत्य है, वह काय, मन तथा वाक्यका अगोचर 'सर्वव्यवहारसमतिक्रान्त' तथा निर्विशेष है। उसकी उत्पत्ति और निरोध नहीं होते, अभिधेय-अभिधान सम्बन्ध तथा ज्ञेय-ज्ञान इत्यादि 'कारक भेद भी उसमें नहीं है। पितापुत्रसमागममें स्पष्ट ही लिखा है कि ये दोनों सत्य ही ज्ञेय हैं। बुद्धदेवने इन दोनोंका शून्यरूपमें साक्षात्कार किया था, इसीलिए वे सर्वज्ञ होनेमें समर्थ हुए थे। परमार्थसत्य माध्यमिक ग्रन्थोंमें अनभिलाप्य, अनाज्ञेय, अपरिज्ञेय, अविज्ञेय, अदेशित, अप्रकाशित तथा अक्रियरूपमें निषेधरूपसे वर्णित है।

* द्रष्टव्य—प्रज्ञाकरमतिकृत बोधिचर्यावतारपञ्जिका पृष्ठ ३५२।

धर्मोपदेश देते हैं *। बाह्य अथवा आध्यात्मिक सभी पदार्थोंके दो स्वभाव हैं—१ सांवृतिक और २ परमार्थिक †। इनमें से एककी सत्ता पृथग्जनोंके मिथ्यादर्शनके विषयरूपमें प्रकाशित होती है। ये सब पृथग्जन अभूतार्थ-दर्शी हैं, क्योंकि उन लोगोंका बुद्धिनेत्र अविद्यारूपी अन्धकारसे आच्छन्न रहता है। दूसरेकी सत्ता तत्त्ववित् आर्योंके सम्यग्दर्शनके विषयरूपमें आविर्भूत होती है। इन लोगोंका सम्यग्ज्ञानरूप नेत्र अविद्यापटलके प्रविचय (विवेक-ज्ञान) रूप अञ्जनशलाकासे च्छिन्न होनेके कारण उन्मीलित रहता है।

दुःख, समुदय (दुःखका कारण), निरोध (दुःखनिवृत्ति) और मार्ग (दुःखनिवृत्तिका उपाय)—ये चार आर्यसत्य भी वास्तवमें दो ही हैं, क्योंकि दुःख, समुदय और मार्ग ये तीन संवृतिस्वभाव होनेके कारण संवृतिसत्यके अन्तर्भूत हैं। एकमात्र निरोध परमार्थ सत्य है। सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि ये दो सत्य भी वास्तविक नहीं हैं, क्योंकि संवृति लौकिक प्रतीतिके अनुरोधसे ही सत्य कही गई है, वस्तुतः परमार्थ ही एकमात्र सत्य है। 'वस्तुतस्तु परमार्थ एव एकं सत्यम्, अतो न काचित् क्षतिः। यथोक्तं भगवता—एकमेव भिक्षवः! परमं सत्यं यदुताप्रमोषधर्मनिर्वाणं सर्व-संस्काराश्च मृषामोषधर्माणः।'

अत एव सिद्ध होता है कि माध्यमिकमतमें वस्तुतः अद्वय ही तत्त्व है। वह यद्यपि अवाच्य है, तथापि दृष्टान्त द्वारा उसका वर्णन किया जाता है—

"अनक्षरस्य धर्मस्य श्रुतिः का देशना च का।
श्रूयते देश्यते चार्थः समारोपादनक्षरः॥"

व्यवहारके आधारपर परमार्थका उपदेश किया जाता है। परमार्थकी उपलब्धि होनेपर निर्वाण-प्राप्ति होती है। परमार्थ सत्य आर्योंके लिए संविदित-स्वभाव है, इसी लिए वह प्रत्यात्मबोध कहा जाता है। एकमात्र योगी ही उसके ज्ञाता हैं। परन्तु सांवृतिक सत्यके ज्ञाता प्राकृत जन हैं ‡। सर्वधर्मानुपलम्भ-

---

* द्रष्टव्य—मध्यमकमूल, २४।८।

† सम्यग्मृषादर्शनलब्धभावं रूपद्वयं बिभ्रति सर्वभावाः।
सम्यग्दृशां यो विषयः स सत्यं मृषादृशां संवृतिसत्यमुक्तम्॥ (मध्यमकावतार ६।२३)

‡ संसारप्रवर्तक अविद्या अथवा तृष्णा प्रकृति कही जाती है।

रूप समाधि ही 'योग'पदसे कही जाती है। उक्त समाधिसे सम्पन्न पुरुष ही माध्यमिक शास्त्रमें योगी कहा गया है। प्राकृतजनोंका अनुभव योगियोंके अनुभवसे बाधित होता है। निर्मल होनेके कारण योगीका ज्ञानचक्षु अनास्रव ज्ञानमय है। परन्तु यह स्मरण रखने योग्य बात है कि यद्यपि शुद्ध होनेके कारण योगीका ज्ञान प्राकृत जनोंके ज्ञानको बाधित कर देता है, तथापि योगियोंमें भी परस्पर तारतम्य है। इसमें हेतु यह है कि सब योगियोंमें प्रज्ञा अथवा समाधिसम्पत्तिका प्रकर्ष समानरूपसे नहीं रहता। जिनके ज्ञाननेत्रसे जितना अधिक आवरण उन्मुक्त हुआ रहता है, उनमें उतना ही अधिक उत्कर्ष होता है, जैसे प्रमुदिता भूमिके (प्रथम भूमिकाके) ज्ञान आदिसे विमला भूमिके ज्ञान आदि अधिक उत्कृष्ट हैं। यही बात ध्यानमें भी समझनी चाहिए।

यह अद्वय परमार्थसत्य ही शून्यवादियोंके धार्मिक साहित्यमें तथागत धर्मके नामसे प्रसिद्ध है। जितने स्वहित और परहित हैं उन सबका यही एकमात्र आधार है, क्योंकि जब तक इसका अवलम्ब नहीं मिलता तब तक न अपना कल्याण-लाभ होता है और न दूसरेके कल्याण साधनमें सामर्थ्य ही होती है। अविद्यासे अस्पृष्ट होनेके कारण वह सब प्रकारके मलोंसे उन्मुक्त है। एक ओर क्लेशरूप आवरणसे और दूसरी ओर ज्ञेयरूप आवरणसे वह मुक्त है। पुद्गल-नैरात्म्य और धर्म-नैरात्म्य—इन दो प्रकारके नैरात्म्योंकी प्राप्ति ही उसका स्वभाव है।

सम्यक्संबोधिके बिना इस अद्वयतत्त्वकी उपलब्धि नहीं हो सकती। सम्यक् संबोधिको प्राप्त करनेके लिए प्रज्ञाकी आवश्यकता है। बौद्ध लोग कहते हैं कि शुष्क प्रज्ञासे कोई लाभ नहीं हो सकता। पुण्यसंभार तथा ज्ञानसंभारसे ही प्रज्ञाकी उत्पत्ति होती है। दान, शील तथा क्षान्तिके दीर्घ-कालीन अभ्यासके प्रभावसे पुण्य संभारका उदय होता है। वीर्य और समाधिके अभ्यासके प्रभावसे ज्ञानसंभार उत्पन्न होता है। इन दोनोंसे विशुद्ध प्रज्ञाका उन्मेष होता है। धीरे धीरे प्रज्ञाकी निर्मलताका सम्पादन करना पड़ता है। प्राथमिक प्रज्ञा हेतु अथवा साधन स्वरूप है, उससे फलस्वरूप यथार्थ प्रज्ञाका विकाश होता है। साधन प्रज्ञा भी पहले श्रुतमयी, चिन्तामयी तथा भावनामयी रूपमें प्रकट होती है। इस अवस्थामें साधक अधिमुक्तचरित कहा जाता है। इसके बाद अपरोक्ष ज्ञानके आविर्भावके साथ साथ प्रज्ञा बोधिसत्त्वभूमिमें प्रविष्ट

होकर क्रमशः निम्नवर्ती भूमियोंका परिहार करती हुई ऊर्ध्व भूमिको प्राप्त कर प्रकृष्टता-लाभ करती है। पर्यवसानमें अर्थात् अन्तिम भूमिमें राग आदि पञ्चक्लेश-रूप क्लेशावरण तथा पञ्चविध ज्ञेयावरणके छूट जानेपर बोधिसत्त्वभूमि अतिक्रान्त हो जाती है। इसीके साथ ही द्वैतभावकी समाप्ति होती है। एवं फलभूत बुद्धत्वरूप अद्वैत प्रज्ञा आविर्भूत होती है। साधारणतः बोधिसत्त्व भूमियां दस मानी जाती हैं *। बुद्धत्व ही प्रज्ञाका आत्यन्तिक उत्कर्ष है। आध्यात्मिक लोग

---

* बोधिसत्त्वभूमियां कुल कितनी हैं इस विषयमें सन्देह है। महायानसाहित्यमें प्रायः दस भूमियां मानी गई हैं। दशभूमिसूत्रमें इसका विशेष विवरण मिल सकता है—प्रमुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दुरङ्गमा, अचला, साधुमती और धर्ममेघा—इन दस भूमियोंके बाद तथागत भावका—बुद्धत्वका—विकाश होता है। पहली भूमिमें विशेषरूपसे दानपारमिताका, दूसरी भूमिमें शीलपारमिताका, और तीसरी भूमिमें क्षान्तिपारमिताका अभ्यास करना पड़ता है। इस तीसरी भूमिमें ही चार रूपध्यानों, चार आरूप्यसमापत्तियों, चार ब्रह्मविहारों और पाँच अभिज्ञाओंका लाभ होता है। कामास्रव, भवास्रव और अविद्यास्रव छूट जाते हैं। चौथी भूमिमें ३७ बोधिपक्षधर्मोंका और वीर्यपारमिताका अभ्यास करना पड़ता है। पाँचवी तथा छठी भूमिमें ध्यान तथा प्रज्ञा पारमिताका अभ्यास आवश्यक है। छठी भूमिमें ही योगी प्रतीत्यसमुत्पादका—कार्यकारणभावका—स्वरूप समझ सकते हैं। उस अवस्थामें संसार तथा निर्वाण दोनों ओर चित्तका आभिमुख्य रहता है। सप्तमी भूमिमें योगीको ज्ञात होता है कि सब बुद्ध ही धर्मधातुकी दृष्टिसे एक अद्वैत और अखण्ड तत्त्व है। बुद्धके अनन्तगुण उनमें प्रकट होने लगते हैं। असंख्य स्थानोंमें उन्हें अपने असंख्य शरीर दीखने लगते हैं। इस भूमिमें दस पारमिताओंका अभ्यास प्रत्येक क्षणमें होता है। यहींपर शीलाभ्यासकी समाप्ति होकर मुक्ति प्राप्त होती है। बोधिसत्त्व उस समय इच्छा करनेपर निर्वाणमें प्रविष्ट हो सकते हैं, किन्तु समस्त जगत्का कल्याण करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है, अतएव वे निर्वाण ग्रहण नहीं करते, अनन्त बुद्धज्ञानमें प्रविष्ट हो जाते हैं। उस समय चारों प्रकारके विपर्यास उनसे निवृत्त हो जाते हैं। उस वक्त उपायकौशल्य पारमिताका अभ्यास होता है। ८ वीं भूमिमें अनुपपत्तिक धर्म क्षान्तिकी प्राप्ति होती है, जिसके प्रभावसे किसी प्रकारका कर्म उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। इस अवस्थामें चारों तरफके बुद्ध आकर उन्हें अनन्तज्ञानमें दीक्षित करते हैं। उस दीक्षाके बलसे ही वे परोपकार करनेकी सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। अन्यथा निर्वाणसे बचना उनके लिए असंभव हो जाता। इस भूमिमें सब प्रकारके वशित्वका लाभ होता है और प्रणिधानपारमिताका अभ्यास चलता है। ९ वीं भूमिमें योगी और भी आगे बढ़ जाते हैं। उस समय योगी चार प्रतिसंविदोंको प्राप्तकर बहुत समाधियोंको अपने आयत्त कर लेते हैं। धारणासे उनकी आत्मरक्षा होती है और बहुपारमिताका अभ्यास चलता है। इसके बाद दशममें अथवा अन्तिम भूमिमें उनकी अभिषेकक्रिया निष्पन्न होती है। उस समय दिव्य, उज्ज्वल देह उन्हें प्राप्त होता है, रत्नमण्डित दिव्य कमलके ऊपर उनका आसन होता है और

इस प्रज्ञाको सर्वाकारोपेत, सर्वधर्मशून्यताधिगमस्वभाव और निर्विकल्पक कहते हैं। इस अवस्थाके प्राप्त होनेपर स्वदुःख और परदुःख सदाके लिए निवृत्त हो जाते हैं। समस्तधर्म स्वभावहीन हैं, यही शून्यता है। बुद्धकी अवस्थाको प्राप्त हुए बिना इसकी यथार्थ उपलब्धि नहीं हो सकती।

शून्यवादके अनन्तर विज्ञानवादने विशिष्ट दार्शनिक प्रस्थानमें स्थान प्राप्त किया। परन्तु विज्ञानवादका सिद्धान्त लङ्कावतारसूत्र, सन्धिनिर्मोचनसूत्र प्रभृति ग्रन्थोंमें पहले ही किसी न किसी रूपमें विद्यमान था। साधारणतः मैत्रेयनाथ और आचार्य असंग विज्ञानवादके विशिष्ट प्रचारक माने जाते हैं। उत्तर कालमें असंगके भ्राता वसुबन्धु भी वैभाषिक सिद्धान्तका परिहार कर योगाचारमतका ग्रहण करते हुए विज्ञानवादके प्रचारमें तत्पर हुए थे।

लङ्कावतारमें भी परमार्थ तथा संवृतिका भेद दिखाया गया है, परन्तु नागार्जुनके माध्यमिक सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें इस विषयपर जितना सूक्ष्म विचार है, लङ्कावतारमें उतना सूक्ष्म विचार नहीं मिलता। संवृतिसत्य परिकल्पित तथा परतन्त्र सत्य स्वभावके साथ संपृक्त है। इन दोनों प्रकारके ज्ञानोंके बाद परिनिष्पन्न ज्ञान होता है, जिससे परमार्थ सत्यका सम्बन्ध माना जाता है। परमार्थका नामान्तर भूतकोटि—संवृति उसीका प्रतिबिम्बमात्र है। लङ्कावतारमतमें बुद्धि दो प्रकारकी मानी गई है। १—प्रविचय बुद्धि, और २—प्रतिष्ठापिका बुद्धि। प्रविचय बुद्धिसे पदार्थोंके तत्त्वका ग्रहण होता है। सभी पदार्थ सत्, असत् आदि चारों कोटियोंसे मुक्त हैं। प्रतिष्ठापिका बुद्धिसे भेदप्रपञ्च आभासित होता है और सत्‌रूपसे प्रतीत होता है। यह आपेक्षिक है। यह प्रतिष्ठापन व्यापार समारोप कहा जाता है। लक्षण, इष्ट, हेतु और भाव, इन चारोंका आरोप होता है—जिसके प्रभावसे विवाद और विरोधका सूत्रपात होता है। इसीलिए दोनों पक्षोंसे बाहर रहने—द्वन्द्वातीत होने—के लिए योगीको चाहिये कि प्रतिष्ठापिका बुद्धिका अतिक्रमण कर ऊपर उठ जाय। परतन्त्र स्वभावकी क्रिया बाह्यसत्यसापेक्ष है। किन्तु परिकल्पित केवल अमूलक कल्पनामात्र है।

उनके विशुद्ध ज्योतिर्मय देहसे रश्मियाँ विकीर्ण होने लगती हैं, जिनके प्रभावसे जीवोंकी दुःखनिवृत्ति होती है। असंख्य निर्माण कार्योंके द्वारा वे उपदेश देते हैं और ज्ञानपारमिताका अभ्यास चलता है। दस भूमियोंके अतिक्रान्त होनेपर वे दशभूमीश्वर कहलाते हैं। यह बुद्धत्व-लाभ है—इसीका दूसरा नाम पूर्णता है।

परतन्त्र उतना दूषणीय नहीं है, परन्तु परिकल्पितके सम्बन्धसे दोषका आविर्भाव होता है। इन दोनोंका स्वभाव एक दूसरेके अधीन है। परतन्त्रलक्षण स्वयंभूत नहीं है, किन्तु हेतुप्रत्ययजन्य है। परिकल्पितलक्षणमें ग्राह्यग्राहक-भावका स्पष्ट प्रादुर्भाव होता है। विज्ञानके स्वरूपमें वस्तुतः न ग्राह्यत्व है और न ग्राहकत्व है। ग्राह्यभाव और ग्राहकभाव दोनों ही परिकल्पित हैं। जिस समय ग्राह्य अथवा ग्राहक भाव निवृत्त हो जाता है, उस समयकी अवस्था परिनिष्पन्न लक्षण कही जाती है। परतन्त्रकी सर्वदा परिकल्पितस्वभावहीनता ही परि-निष्पन्नता है। इस प्रकार विविध सत्ताका विवरण विशेषरूपसे हृदयंगम होना चाहिये, नहीं तो लङ्कावतारके तात्पर्यका ग्रहण करना कठिन हो जायगा। त्रैधातुक अर्थात् काम, रूप तथा अरूप जगत्में विद्यमान चित्त और चैत्त ही अभूतपरिकल्प्य हैं। पहले जो परिनिष्पन्न, परतन्त्र तथा परिकल्पित इन तीन प्रकारके लक्षणोंका वर्णन किया गया है, वह सब इसीका समझना चाहिए।

लङ्कावतारके मतसे सम्पूर्ण भाव निस्स्वभाव हैं। समग्र प्रपञ्च मेघ, अलातचक्र अथवा गन्धर्वनगरके सदृश है। कहीं-कहीं यह अनुपम माया-मरीचिका अथवा स्वप्नरूपमें भी वर्णित हुआ है। बाह्य वस्तु अनादिकालसे ही भ्रान्तिजन्य मनोविजृम्भणमात्र है। लङ्कावतारका मत है कि इस दृष्टिसे बाह्य सत्ताको देखनेसे विकल्पका बन्धन टूट जाता है। तब समझमें आता है कि देह, मोक्ष और प्रतिष्ठा अर्थात् समग्र जगत् आलयविज्ञान अथवा चित्तका परिणाममात्र है। उस समय द्रष्टा और दृश्यके ज्ञानकी निवृत्ति होनेपर निराभास अवस्थाका, जिसमें द्वैतभावका लेशतक नहीं रहता, स्फुरण होता है। तन्मयताके साथ-साथ चित्त अभेदको प्राप्त हो जाता है। जन्म, स्थिति और नाश सब अपने चित्तके ही भाव हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इसीलिए उस समय नाम आदिका ज्ञान नहीं रहता। इस अवस्थाके उदयसे संसार तथा निर्वाणमें भी साम्यदृष्टि हो जाती है।

महाकरुणा, उपाय तथा अनाभोगचर्या—जिस प्रकार सूर्य सब वस्तुओंके ऊपर समानरूपसे अपनी किरणोंको फैंकते हैं, किसीपर पक्षपात नहीं करते ठीक उसी प्रकार—द्वारा बोधिसत्त्व सब कुछ देखते हैं और जानते हैं कि यह विश्वप्रपञ्च मायिक है, छायाके सदृश अलीक है, क्योंकि यह कारणके बिना उद्भूत है (अकारण-क्लृप्त है)। वे जानते हैं कि चित्तके बाहर

जगत्‌की सत्ता नहीं है। इसके अनन्तर क्रमशः उच्चतर भूमिमें आरूढ़ होकर इस प्रकारकी समाधिकी प्राप्ति करते हैं जिससे अपरोक्षतया अनुभूत होता है कि तीनों धातु ही अर्थात् समग्र जगत् ही चित्तमात्र है। इस समाधिका नाम मायोपम समाधि है। इसके अनन्तर वज्रबिम्बोपम समाधिका आविर्भाव होता है, जिसके बलसे चित्तके सब आकार निवृत्त हो जाते हैं—अर्थात् चित्त निराकार हो जाता है, ज्ञान पूर्ण हो जाता है और सब वस्तुओंमें अजातत्व' स्पष्टतया अनुभूत होने लगता है। बुद्धकायप्राप्तिका यही समय है। यह भूततथतामें अवस्थिति है। इस अवस्थामें योगी १० बल, ६ अभिज्ञाओं और १० वशित्वोंको अपने आयत्त करते हैं और एक साथ असंख्यरूपमें प्रकट होते हैं। वे उपायके बलसे सब बुद्धक्षेत्रोंका दर्शन करते हैं और दार्शनिक मतवाद, चित्तके मल और विज्ञानसे मुक्त होकर अपने भीतर 'परावृत्ति' का अनुभव करते हैं। इसके अनन्तर धीरे धीरे तथागतकायमें अर्थात् बुद्धकायमें विशुद्धरूपसे अवस्थित होते हैं। बुद्धकायमें अवस्थान होनेके लिए स्कन्ध, धातु, आयतन, कारण, कार्य, नीति, जन्म, स्थिति तथा विनाश, इन सबसे दूर रहते हुए चित्तमात्रमें प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। संसार अनादिकालसे संचित वासनाओंके प्रभावसे चित्तमात्रसे ही विकल्पवश उद्भूत हुआ है। परन्तु बुद्धत्व निराभास, अजात तथा स्वसंवेद्य है। चित्तके पूर्ण संयम और अनाभोगचर्याके द्वारा बुद्धभावका अधिगम होता है। लङ्कावतारमें वर्णित ५ धर्मोंमें तथता ही श्रेष्ठ है। मन जिस समय नाम (संकेतमात्र) और निमित्त (इन्द्रियग्राह्य विषयोंका गुण, जैसे रूप) स्वरूप दो धर्मोंके द्वारा स्पृष्ट न होनेके कारण शान्त रहता है, उस समय इस अवस्थाका उदय होता है। सम्यक्‌ज्ञानरूप धर्म द्वारा नाम और निमित्तमय जगत्‌का पर्यवेक्षण करनेसे ज्ञात होता है कि यह सब सद् भी नहीं है और असद् भी नहीं है, यह सब समारोप और अपवादसे परे है, अर्थात् इसके विषयमें न कुछ विधान ही किया जाता है और न कुछ निषेध ही किया जा सकता। विकल्परूप धर्म भी उस समय नहीं रहता, इसीलिए वस्तु और गुणका परस्पर भेदग्रहण भी नहीं रहता।

निर्वाणके विषयमें *इस ग्रन्थका कथन है कि यह यथाभूतार्थस्थानदर्शनसे ही प्राप्त होता है। यह सब प्रकारके विकल्पोंसे अतीत है।

आलयविज्ञानमें अनादिकालसे असंख्य वासनाएँ विद्यमान रहती हैं। ये वासनाएँ जब तक अविद्या, मिथ्यादृष्टि, अभिनिवेश आदिसे रञ्जित रहती हैं तब तक सत्यका अर्थात् तथताका स्वरूपदर्शन ठीक ठीक नहीं होता। इसीलिए निर्वाण भी नहीं हो सकता। इसीसे उच्छेददृष्टि, शाश्वतदृष्टि, भवदृष्टि और अभवदृष्टि—इन सब विकल्पोंका परिहार करके आलयका संशोधन करना चाहिये। यही आश्रय-परावृत्ति है। महायानमतमें वस्तुतः संसार और निर्वाणमें किसी प्रकारका भेद नहीं है, इसलिए वे जागतिक सत्ताका आत्यन्तिक विनाश नहीं मानते हैं। जिस मार्ग अथवा योगसे संसारसे निर्वाण प्राप्ति होती है, उसके प्रभावसे उस सत्ताका ध्वंस नहीं होता। केवल आश्रयकी परावृत्तिमात्र होती है अर्थात् वह सत्ता बुद्धकायघटक उपादानमें परिणत हो जाती है *। उस समय सब पदार्थ ही शून्य अर्थात् स्वभावरहित प्रतीत होते हैं। यही नित्य अपरोक्ष-दर्शनका स्वरूप है। आश्रयपरावृत्तिकी सिद्धि होनेपर ज्ञात होता है कि निर्वाण निर्धर्मक तथा निर्विशेष है। इसमें न लाभ है, न हानि है, न त्याग है, न ग्रहण है, न एकत्व है और न नानात्व ही है। †

ऊपर संक्षेपसे लङ्कावतारसूत्रके दार्शनिक सिद्धान्तके विषयमें कुछ आलोचना की गई है। सन्धिनिर्मोचनसूत्रमें भी योगाचार-मत ही आलोचित हुआ है। इसके बाद बोधिसत्त्व मैत्रेयनाथ, असंग, वसुबन्धु आदि दार्शनिकोंने योगाचारसिद्धान्तका विशेषरूपसे परिष्कार कर विभिन्न प्रकारके ग्रन्थोंका निर्माण किया था। मैत्रेयनाथके पांच ग्रन्थ विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं, जिनमें मध्यान्तविभागसूत्र अन्यतम है। महायानसूत्रालङ्कारका कारिकांश भी मैत्रेयनाथ-द्वारा रचित है, यह Pandit H. Ui ने अच्छी तरहसे प्रमाणित किया है। साधारणतया यह ग्रन्थ असंगकृत माना जाता था। योगाचार अथवा योगा-

---

* महायानसंग्रहमें आश्रयपरावृत्तिका वर्णन इस प्रकार किया गया है—धातु अथवा सत्ताका जिस अंशमें आवरणसंस्कार और संक्लेश विद्यमान है यदि उस अंशका हेतु फलभाव निवृत्त हो जाय, यदि धर्मसे आरोपित भाव निवृत्त हो जाय, तब सब प्रकारके आवरणोंसे मुक्ति होती है और सब धर्मोंके ऊपर अपना प्रभाव या स्वामित्व (वशवर्तित्व) अधिगत होता है। और उसीके प्रभावसे धर्मका दूसरा स्वभाव (जिससे शुद्धि अथवा 'व्यवदान' होता है) अभिव्यक्त होता है। परावृत्तिका विशेष विवरण असंगकृत महायानसूत्रालङ्कारमें देखना चाहिए।

† हीनयानियोंका निर्वाण संसारसे विलक्षण है, किन्तु लङ्कावतारके मतमें संसार और निर्वाणमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है।

चार्य) भूमिशास्त्र भी मैत्रेयनाथ रचित ही है। सुप्रसिद्ध बोधिसत्त्वभूमि नामक ग्रन्थ इसीका एक भाग है। असंगका महायानसंग्रह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। वसुबन्धुने अपने ज्येष्ठ भ्राताके लोकोत्तर प्रभावसे प्रभावित होकर जिस समय सर्वास्तिसम्प्रदायसे सम्बन्धविच्छेद किया था, उस समय उनके आदेशसे वे योगाचारसिद्धान्तप्रतिपादक ग्रन्थोंके निर्माणमें प्रवृत्त हुए थे। विंशिका तथा त्रिंशिका नामक विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिकी दो पुस्तकें, मध्यान्तविभागसूत्रका भाष्य, और महायानसूत्रालङ्कारवृत्ति—ये सब ग्रन्थ वसुबन्धुके हैं। स्थिरमतिने वसुबन्धु-रचित त्रिंशिका और महायानसूत्रालङ्कारवृत्तिके ऊपर भाष्य बनाया था और मध्यान्तविभागसूत्रभाष्यके ऊपर टीका भी लिखी थी।

विज्ञानवादी योगीके मतसे क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरणकी निवृत्तिसे ही परमार्थलाभ हो सकता है। जब तक ये दो प्रकारके आवरण रहते हैं तब तक किसी भी उपायसे मोक्ष तथा सर्वज्ञत्वलाभ नहीं हो सकता। क्लेश मोक्षका अन्तराय है। क्लेशनिवृत्ति सिद्ध होनेपर ही मोक्षलाभ होता है। परन्तु सर्वज्ञत्व तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक द्वितीय आवरण अर्थात् ज्ञेयावरण पूर्णरूपसे कट न जाय। अक्लिष्ट और क्लिष्ट भेदसे अज्ञान दो प्रकारका है। क्लिष्ट अज्ञानकी निवृत्ति क्लेशके साथ ही साथ हो जाती है। परन्तु क्लेशोंका उपशम होनेपर भी अर्थात् मुक्तावस्थामें भी अक्लिष्ट अज्ञान रह ही जाता है। जब उसका भी निरोध हो जाता है, तभी सर्वाकारक आसक्तिहीन तथा अप्रतिहत ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। सर्वज्ञत्वलाभ करनेके लिए यह प्राथमिक अवस्था है।

आत्मदृष्टिसे राग आदि क्लेश उत्पन्न होते हैं। जब साधकको पुद्गल-नैरात्म्य ज्ञानमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, तब सत्कायदृष्टि अथवा देहात्मबोधकी निवृत्ति होकर तन्मूलक सब क्लेशोंकी निवृत्ति हो जाती है। यही मुक्तावस्था है। इसके अनन्तर धर्मनैरात्म्यज्ञानसे द्वितीय प्रकारका आवरण अर्थात् ज्ञेया-वरण कट जाता है। इससे सर्वज्ञत्वभाव अधिगत हो जाता है।

आत्मा, जीव, जन्तु, मनुष्य—ये सब आत्मोपचार हैं। स्कन्ध, धातु, आयतन, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—ये सब धर्मोपचार हैं। ये दोनों प्रकारके उपचार ही वस्तुतः विज्ञानके परिणाम हैं। विज्ञानके बाहर इनकी सत्ता नहीं है अर्थात् विज्ञानके परिणामसे अतिरिक्त आत्मा या धर्म

नहीं माना जा सकता। अन्यथाभावका नाम ही परिणाम है। आत्मादि-विकल्पवासनाओंकी पुष्टि होनेसे आलयविज्ञानसे आत्मादिका निर्भासमय विकल्प उत्पन्न होता है। इसी प्रकार रूपादिविकल्पवासनाकी पुष्टिसे आलयविज्ञानसे ही रूपादिनिर्भासमय विकल्प उत्पन्न होता है। इस रूपादि-निर्भासको अथवा आत्मादिनिर्भासको विज्ञानसे बहिर्भूतके सदृश मानकर रूपादि उपचार—व्यपदेश—अनादिकालसे ही प्रवृत्त है। रूपादि या आत्मादि-के न रहनेपर भी तादृश उपचार अनादि कालसे ही है। वस्तुतः जहाँ जो वस्तु नहीं है, वहाँ उसका उपचार होता है। विशेषरूपसे यदि विचार किया जाय तो मालूम पड़ता है कि आत्मा तथा धर्म न विज्ञानके स्वरूपमें हैं, न विज्ञानके बाहर हैं—ये दोनों ही परिकल्पित हैं। इसीलिए ये पारमार्थिक या सत्य नहीं हैं।

कोई-कोई लोग समझते हैं कि विज्ञान तथा विज्ञेय दोनों ही सत्य हैं। परन्तु यह एकान्तवाद ठीक नहीं है, क्योंकि पहले कहा गया है आत्मा तथा धर्म, परिकल्पित होनेके कारण, विज्ञानके स्वरूपमें अथवा बाहर हैं ही नहीं, इसी कारणसे विज्ञेय अर्थात् आत्मा या धर्म सत्य नहीं कहा जा सकता। परन्तु उपचार निराधार नहीं होता है। इसीलिए मानना पड़ता है कि वस्तुतः विज्ञानका परिणाम है, जिसमें आत्मा तथा धर्मका उप-चार हो सकता है।

कोई-कोई लोग यह भी कहते हैं कि जैसे विज्ञेय सांवृतिक अथवा मिथ्या है, तद्वत् विज्ञान भी मिथ्या है। परन्तु यह मत ठीक मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि उपादान संवृतिरूप माननेके योग्य नहीं है। इसीलिए विज्ञानवादी आचार्योंका सिद्धान्त है—

"सर्वं विज्ञेयं परिकल्पितस्वभावत्वात् वस्तुतो न विद्यते, विज्ञानं पुनः प्रतीत्यसमुत्पन्नत्वात् द्रव्यतः अस्ति इत्यभ्युपेयम्।"

परिणाम शब्दसे मालूम पड़ता है कि विज्ञान प्रतीत्यसमुत्पन्न है। बाह्य अर्थके व्यतिरेकसे भी विज्ञान स्वयं ही अर्थके रूपमें परिणत होता है। विज्ञानके आलम्बन प्रत्ययरूपमें बाह्यार्थ माना जाता है, इसमें संशय नहीं है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि विज्ञान बाह्यार्थसे उत्पन्न होता है। सिद्धान्त यह है कि बाह्यार्थ स्वाभास ज्ञानका जनक है, क्योंकि कारणता

आलम्बन प्रत्ययके अनुरूप समनन्तर आदि सभी प्रकारके प्रत्ययोंमें समरूपसे ही वर्तमान है। विज्ञानका परिणाम विपाक, मनन तथा विषयविज्ञप्तिरूपसे तीन प्रकारका है। कुशल तथा अकुशल कर्मवासनाके परिपाकसे आक्षेपानुरूप फलाभिनिवृत्ति विपाक नामका परिणाम है। इसीका नामान्तर आलयविज्ञान है। जितने प्रकारके क्लिष्ट धर्म हैं सब इसी बीजसे उत्पन्न होते हैं। कारण-रूपमें सब धर्ममें ही इसकी उपलब्धि होती है। इस आलयविज्ञानकी प्रवृत्ति दो प्रकारसे होती है;—१—आध्यात्मिक अथवा आभ्यन्तरीय और २—बाह्य। प्रवृत्तिविज्ञान तथा आलयविज्ञानमें कुछ भेद है। प्रवृत्तिविज्ञानका आलम्बन तथा आकार परिच्छिन्न है। परन्तु आलयविज्ञानका आकार जैसा अपरिच्छिन्न है वैसा ही इसका आलम्बन भी अपरिच्छिन्न है। विज्ञानपरिणामका द्वितीय भेद मनन अथवा क्लिष्ट मन है। सर्वदा मनन करना ही क्लिष्ट मनका स्वभाव है, इसलिए इसको मनन कहते हैं। जैसे चक्षुरादि विज्ञानके आश्रय चक्षुरादि इन्द्रियाँ और उसके आलम्बन रूप आदि विषय हैं, उसी प्रकार क्लिष्ट मनका भी आश्रय आलयविज्ञान है, क्योंकि आलयविज्ञान अथवा विपाक जिस धातुमें या भूमिमें रहता है, उसी धातु या भूमिमें क्लिष्ट मन भी रहता है। क्लिष्ट मनकी वृत्ति आलयविज्ञानसे नियत सम्बद्ध है अर्थात् आलयमें आश्रित होकर ही क्लिष्ट मन अपना कार्य करता है। क्लिष्ट मनका आलम्बन आलय-विज्ञान ही है। सत्कायदृष्टि, देहाध्यास प्रभृतिके सम्बन्धसे 'अहम्' 'मम' इत्यादि आकारमें आलयविज्ञानका आलम्बनसे क्लिष्ट मन काम करता है। जिस आलय वा चित्तसे मनोविज्ञान उत्पन्न होता है उसी चित्तको उस मनोविज्ञानके लिए आलम्बन मानना चाहिए। मननाख्य विज्ञानका ही नामान्तर मन है। यह जैसे आलयसे पृथक् है, वैसे ही प्रवृत्तिविज्ञानसे भी पृथक् है। मनन इसका स्वभाव है। यह विज्ञानात्मक है, इसीलिए सब प्रकारके चित्तधर्मोंसे इसका सम्प्रयोग होता है। चित्तधर्म दो प्रकारके हैं १—क्लेश, २—क्लेशभिन्न। छः प्रकारके क्लेशोंमें चार प्रकारके क्लेशोंके साथ मनका सम्बन्ध रहता है—(क) अविद्या अथवा आत्ममोह, यह आत्मविषयक अज्ञानका नामान्तर है; (ख) आत्मदृष्टि, यह उपादानस्कन्धमें आत्मदर्शनका नामान्तर है, सत्कायदृष्टि भी इसीको कहते हैं; (ग) अस्मिमान अथवा आत्ममान, आत्मदृष्टिसे चित्तकी जो उन्नति होती है वह अस्मिमान कहलाती है; (घ)

तृष्णा अथवा आत्मस्नेह, पूर्वोक्त ३ क्लेशोंके रहनेसे आत्माभिमत वस्तुमें जो अभिष्वङ्ग उत्पन्न होता है, उसे तृष्णा कहते है। आलयविज्ञानके स्वरूपमें संमोह होकर उसमें आत्मदृष्टि-लाभ होता है। आत्मदृष्टिसे चित्तमें अस्मिमानका उदय होता है। क्लेश अकुशल और निवृताव्याकृत रूपसे दो प्रकारका है।

विज्ञानपरिणामका तृतीय भेद विषयविज्ञप्ति है। चक्षुर्विज्ञानादि छः प्रकारके विज्ञानका अथवा विषयप्रत्यवभासका ही नाम विषयविज्ञप्ति है। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य और धर्म, यह छः प्रकारकी विषयोपलब्धि बौद्धग्रन्थोंमें तृतीय प्रकार विज्ञानपरिणाम मानी जाती है। यह उपलब्धि कुशल हो सकती है, अकुशल हो सकती है या उभयभावसे भिन्न अव्याकृत भी हो सकती है। अलोभ, अद्वेष और अमोहसे युक्त विषयोपलब्धि कुशल है। तथा लोभ, द्वेष और मोहयुक्त उपलब्धि अकुशल है। यह तृतीय प्रकारके विज्ञान-परिणाम अर्थात् विषयविज्ञानमें दो प्रकारके धर्म रहते हैं—१—सर्वत्रग धर्म, जैसे कि स्पर्श, मनस्कार, वित्, संज्ञा और चेतना। ये पांच प्रकारके धर्म आलयमें, क्लिष्ट मनमें तथा प्रवृत्तिविज्ञानमें सर्वत्र ही रहते हैं। २—विनियत धर्म, ये धर्मविशेष विशेष विषयमें नियत हैं, ये सर्वत्र नहीं रहते। जैसे कि छन्द (अभिप्रेत वस्तुके प्रति अभिलाषा), अधिमोक्ष (निश्चित वस्तुमें अवधारण), स्मृति (संस्तुत वस्तुमें चित्तका असंप्रमोष अथवा अभिलपनता), समाधि (उपपरीक्षणीय वस्तुमें चित्तकी एकाग्रता), धी अर्थात् प्रज्ञा *।

---

* दर्शन, श्रवण आदि क्रियाके विषयरूपसे जो वस्तु अभिमत है उसे अभिप्रेत वस्तु कहते हैं। ऐसे वस्तुके विषयमें दर्शन श्रवण आदिकी प्रार्थना या इच्छाका नाम छन्द है। युक्ति अथवा आप्तोपदेशसे जो वस्तु असंदिग्धरूपसे गृहीत होती है, उसे निश्चित वस्तु कहते हैं। जिस आकारमें (जैसे अनित्य अथवा दुःखमय इत्यादि) कोई वस्तु निश्चित होती है, उसी आकारमें ही उस वस्तुका चित्तमें जो अभिनिवेश किया जाता है अर्थात् यह वस्तु ऐसी ही है दूसरे प्रकारकी नहीं है, उसको अधिमोक्ष कहते हैं। साधक दीर्घकाल तक अभ्यास करके अधिमुक्ति अवस्थाके प्राप्त होनेपर प्रवादिगण अर्थात् दूसरे सिद्धान्तमें आग्रह रखनेवाले लोग उसे अपने सिद्धान्तसे हटा नहीं सकते। पूर्वानुभूत वस्तुको संस्तुत वस्तु कहते हैं। आलम्बन ग्रहणके नष्ट न होनेसे असम्प्रमोष होता है। पूर्वगृहीत वस्तुका पुनः आलम्बनके आकारमें स्मरण करना अभिलपनता है। इस अवस्थाके प्रतिष्ठित होनेपर चित्त दूसरे आकारमें विक्षिप्त नहीं होता। वस्तुके गुण अथवा दोषका निरूपण ही उपपरीक्षण है। एकाग्रता होनेपर चित्तके आलम्बनमें भेद अथवा भेदाभास नहीं रह सकता।

इस प्रज्ञा या ज्ञानको विवेक कहते हैं। इसका विषय स्वलक्षण भी हो सकता है और सामान्यलक्षण भी हो सकता है। बौद्धदर्शनमें इसका नामान्तर धर्मविचय है। यह सम्यक्, मिथ्या अथवा संकीर्ण हो सकता है। यह ज्ञान कदाचित् योगसे उत्पन्न होता है कदाचित् अयोगसे उत्पन्न होता है और कभी-कभी इन दोनों प्रकारोंसे विलक्षण है। आप्तोपदेश, अनुमान और प्रत्यक्ष—इन तीनोंको योग कहते हैं। इनमें आप्तवचनजन्य बोध श्रुतमयी प्रज्ञा है, युक्ति-प्रयोगसे उत्पन्न बोधको चिन्तामयी प्रज्ञा कहते हैं, और समाधिजन्य बोध भावनामयी प्रज्ञा कहलाता है अनाप्तोपदेश, अनुमानाभास और मिथ्याप्रणिहित समाधिसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह अयोगज ज्ञानमें परिगणित है। उपपत्तिप्रतिलम्भिक ज्ञान—अर्थात् सहज ज्ञान या वह ज्ञान जो जन्मके साथ ही साथ उत्पन्न होता है—योगज नहीं है* और अयोगज भी नहीं है। लौकिकव्यवहारमूलक ज्ञान भी इसी कोटिका है। प्रज्ञाके द्वारा धर्मका प्रविचय करनेसे जो निश्चय प्राप्त किया जाता है, उससे संशयकी निवृत्ति होती है।

ये पांच धर्म जिनका वर्णन किया गया है, सब परस्पर व्यावृत्त रहते हैं अर्थात् जहां एक धर्म रहता है (जैसे अधिमोक्ष) वहां अन्यान्य धर्म नहीं रह सकते। इन सर्वत्रग और विनियत धर्मोंके अतिरिक्त श्रद्धादि ग्यारह कुशल धर्मोंका वर्णन भी योगाचार ग्रन्थोंमें मिलता है।

विज्ञानवादियोंके मतसे जो तीन प्रकारके विज्ञानपरिणामकी बात कही गई है, वही विकल्प है। अर्थका आकार धारण करता हुआ विज्ञान ही समस्त विश्वरूप विकल्प बनता है। आलयविज्ञानका, क्लिष्टमनका और प्रवृत्तिविज्ञानका स्वभाव के भेदसे विकल्प तीन प्रकारका है। त्रैधातुक विश्व जिस प्रकार विज्ञानात्मक है वैसे ही असंस्कृत धर्म भी विज्ञानात्मक ही

---

*इससे अर्थात् समाधिके ठीक-ठीक अभ्याससे यथाभूत परिज्ञान होता है अर्थात् यथार्थ ज्ञानका उदय होता है। छन्द प्रभृति नियत धर्मका जो संक्षेपमें वर्णन किया गया है उसकी सार्थकता और प्रयोजनवत्ता कुछ दिनके अभ्याससे ही प्रतीत होने लगती है। छन्दके अभ्याससे वीर्यका उदय होता है, अधिमोक्षसे स्थिरता होती है, स्मृतिसे विक्षेपनिवृत्ति होती है और समाधिसे ज्ञानका उदय होता है।

है। अनधिष्ठित मूल विज्ञानमें कारणके बिना विकल्पोंकी प्रवृत्ति कैसे होती है? इस प्रकारका प्रश्न हो सकता है। विज्ञानवादीका समाधान यह है कि आलयविज्ञानमें सर्वधर्मोत्पादनशक्ति निहित है, अत एव यह सर्वबीजरूप है। आभ्यन्तरीय अन्योन्य संघर्षसे यह आलयविज्ञान ही अनन्त आकारोंको धारण कर तत्-तत् विकल्पोंके रूपमें परिणत होता है।

योगाचारोंका निर्वाणस्वरूप धर्मधातु परमार्थ सत्य है। यह अद्वय या भेद-हीन तत्त्व है। इसमें ज्ञातृ-ज्ञेयरूप अथवा और किसी प्रकारका भेद नहीं है। योगी इस परिनिष्पन्नस्वभाव धर्मधातुका ध्यान करते-करते इसमें समाहित हो जाते हैं और इसके साथ तादात्म्य लाभ करते हैं, जलके जलमें मिलनेसे जैसे तादात्म्य हो जाता है यह भी ठीक वैसे ही है। यही विशुद्ध अद्वैत परिस्थिति है। परिकल्पितस्वभाव बाह्य जगत् है जिसमें सत्त्व (द्रव्य), गुण आदिका आरोप होता है, परतन्त्रस्वभाव क्षणिक विज्ञानात्मक है।

शाब्दाद्वयवाद वैयाकरणोंका सिद्धान्त है। भर्तृहरिका वाक्यपदीय ही इस समय इस मतका मूल ग्रन्थ है। महाभाष्यकार पतञ्जलिके दार्शनिक मतने ही प्राचीन व्याकरणागममें स्थान प्राप्त किया था। परन्तु इस समय उन सब आकर ग्रन्थोंकी उपलब्धि नहीं होती, अतः प्राचीन सिद्धान्तके विषयमें विशेष बातोंको जाननेका कोई उपाय नहीं है। व्याडिका बृहत्संग्रह ग्रन्थ, रावणका आगम और इसी प्रकारके अन्यान्य ग्रन्थोंका पुनरुद्धार होनेपर इस मतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातोंका पता चलेगा। आचार्य शङ्करसे पहले ही इस मतकी स्थापना हुई थी। हर्षचरितमें अन्यान्य सम्प्रदायोंके साथ-साथ शाब्दिकोंका भी उल्लेख मिलता है (पृ० ६३२, जीवानन्द संस्करण)। जयन्तभट्टने न्यायमञ्जरीमें (पृ० ५३१ से ५३६), शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें एवं प्राचीन जैन दार्शनिकोंने भी अपने अपने ग्रन्थोंमें शाब्दिकोंके मतका उल्लेख किया है। ये लोग स्फोटवादी थे। सम्भव है कि मण्डनमिश्रने ब्रह्म-सिद्धिमें इसीके अनुरूप अद्वैतवादका प्रतिपादन किया हो। मण्डनमिश्र भी स्फोटवादी ही थे। परन्तु शङ्कर, कुमारिल आदिने अपनी अपनी दृष्टिके अनु-सार स्फोट-सिद्धान्तका खण्डन किया था। प्रकरणपञ्चिकामें (पृ० १५४, १५५) शालिकनाथने जिस अद्वैतमतका खण्डन किया है, संभव है, वह मत मण्डनमिश्रका हो, आचार्य शङ्करका नहीं है। भवभूतिने उत्तररामचरितमें जो अद्वैतवादका

आभास दर्शाया है, संभव है, वह भी मण्डनका ही अद्वैत हो, शङ्करका नहीं है * ।

वैयाकरण सिद्धान्तके अनुसार पश्यन्ती वाक् ही परा स्थिति रूप है। अक्षर, शब्दब्रह्म, परब्रह्म या परा वाक् इसीके नामान्तर हैं। ज्ञात होता है कि वैयाकरणोंकी दृष्टिमें शब्दब्रह्म तथा परब्रह्ममें विशेष भेद नहीं है। शब्दब्रह्ममें निष्णात होनेपर परब्रह्म-प्राप्ति होती है—यह एक प्रकारसे वैयाकरण लोग भी मानते हैं। परन्तु अन्यत्र इसका जिस प्रकार उपपादन देख पड़ता है व्याकरण आगममें उसका कोई स्थान नहीं है। पश्यन्ती वाक् चैतन्यस्वरूप है, वह अखण्ड, अभिन्न, अद्वय परमतत्त्व है। उसमें ग्राह्य तथा ग्राहकका परस्पर भेद प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार देशगत तथा कालगत क्रमका आभास भी उसमें नहीं है। इसीलिए यह किसी स्थानमें अक्रमा और किसी स्थानमें प्रतिसंहृत-क्रमा कही गयी है। नामान्तरसे इसे आत्मतत्त्व भी कह सकते हैं। वैयाकरण लोग कहते हैं कि यद्यपि इसमें भेद अथवा क्रमकी स्फूर्ति नहीं है, तथापि यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इसमें क्रमशक्तिका समावेश है—"प्रतिसंहृतक्रमापि अन्तःसत्यप्यभेदे समाविष्टक्रमशक्तिः पश्यन्ती"। व्याकरणसिद्धान्तमें पश्यन्ती चलाचल, संनिविष्टज्ञेयाकार, प्रविलीनाकार, निराकार, परिच्छिन्नार्थप्रत्यवभास, संसृष्टार्थप्रत्यवभास तथा प्रशान्तसर्वार्थप्रत्यवभास आदि विभिन्न प्रकारके विशेषणोंसे विशिष्ट देखी जाती है।

रूप, रस आदि विषयोंमें अर्वाक्‌दर्शियोंकी जो विक्षिप्त बुद्धि उदित होती है वह भी वस्तुतः वाक्‌से अभिन्न है। जो लोग शब्दयोगका अवलम्बन करते हुए चित्तका समाधान करनेमें समर्थ हुए हैं उन योगियोंको पश्यन्ती वाक्‌का स्वरूप अनावृत दीख पड़ता है। परन्तु जिनको वाग्योगमें सिद्धि प्राप्त

---

* मण्डनमिश्र और शालिकनाथका समकालीन होना असंभव नहीं है। मण्डनमिश्रने विधिविवेकमें (पृ० १०९) बृहतीसे जिन वचनोंका उद्धार किया है—'कर्तव्यताविषयो नियोगः, न पुनः कर्तव्यतामाह'। वाचस्पति मिश्रने न्यायकणिकामें (पृ० १०९) इनके व्याख्यान प्रसङ्गमें कहा है—जरत्प्रभाकर और नवीनप्राभाकरोंकी व्याख्या भिन्न-भिन्न है। उन्होंने नवीनोंकी व्याख्याका जो उद्धरण किया है, वह ऋजुविमलामें मिलती है। अत एव यह सिद्ध हुआ कि शालिकनाथ वाचस्पति मिश्रके पूर्ववर्ती थे। उन्होंने बहुत स्थानोंमें कुमारिलके वचनोंका उल्लेख किया है।

नहीं हुई, अतएव जिनकी दृष्टिमें पश्यन्तीके शुद्धरूपका प्रतिभास नहीं हुआ, उन लोगोंके लिए पश्यन्ती आवृतस्वरूपा ही है अर्थात् यह अपभ्रशोंसे संसृष्ट ही उन्हें प्रतीत होती है—

"ते तामक्रमां वाचं वेदयन्ते
अपभ्रंशैर्विविक्तां यथा वैयाकरणाः ॥"

ज्ञानमें जैसे सर्वदा ज्ञेयका आकार अनुस्यूत रहता है, क्योंकि लौकिकज्ञान कदापि निर्विषक नहीं हो सकता; उसी प्रकार शब्दमें भी—अर्थात् पश्यन्ती वाक्के स्वरूपमें भी—सर्वदा अर्थका आकार अनुस्यूत ही रहता है। सृष्टिकालमें यह आकार विभिन्न-सा प्रतिभासमान होता है। पश्यन्ती वाक्को सन्निविष्टज्ञेयाकार कहनेका यही हेतु है। परन्तु आकार रहनेपर भी अव्यक्तताके कारण उसका निश्चय नहीं होता। इसीलिए कहीं-कहीं पश्यन्ती प्रतिलीनाकार भी कही गई है। सूक्ष्मताके कारण जब वाक्तत्त्वका ही अवधारण नहीं होता, तब तदाश्रित धर्मोंका तो कहना ही क्या है। इसीलिए कहीं कहीं यह निराकार भी कही जाती है। परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले अर्थोंका आभास इसमें होनेके कारण यह परिच्छिन्नार्थप्रत्यवभासरूपसे वर्णित होती है। पश्यन्तीके स्वरूपमें शब्द और अर्थका परस्पर पार्थक्य नहीं रहता। दोनोंकी ही संभिन्नरूपसे प्रतीति होती है। इसीलिए यह संसृष्टार्थप्रत्यवभास कही जाती है और जिस समय यावतीय अर्थोंकी प्रतीतिका उपराम हो जाता है, उस समय पश्यन्तीकी अवस्था प्रशान्तसर्वार्थप्रत्यवभास कही जाती है।

यह पश्यन्तीरूप शब्दतत्त्व विवक्षासे अर्थात् अर्थप्रतिपादनकी इच्छासे मनोविज्ञानका रूप धारण करता है। इसीका नाम मध्यमा वाक् है—यह अन्तःसञ्जल्पस्वरूपा है, क्योंकि इस अवस्थामें बिन्दु और नादरूप प्राण और अपानवायुके उल्लाससे क्रमका आविर्भाव होता है। इस आभासमान क्रममें क्रमहीन पश्यन्ती अथवा सुषुम्ना प्रच्छन्नरूपमें अन्तरालमें रहती है। मध्यमा वाक्में जो क्रमका परिग्रह होता है, वह आभासमान है, क्योंकि बुद्धि जब एक और अभिन्न है तथा शब्द जब बुद्धिसे अतिरिक्त नहीं है, तब भेदमय क्रमको आभासमान ही कहना पड़ेगा। उसे वास्तविक नहीं कह सकते। परमार्थ दृष्टिसे उसमें क्रम नहीं है। प्राणकी सूक्ष्म वृत्तिके अनुसार इस क्रमका अविर्भाव होता है। परन्तु जिस समय करणसमूहके अभिघातके कारण प्राणमें

स्थूलवृत्तिका उदय होता है उस समय वैखरी वाक्का आविर्भाव होता है। इसमें स्थूलत्वके कारण क्रम स्पष्ट ही माल्म पड़ता है। वस्तुतः पश्यन्ती ही मुखमें आकर कण्ठादि स्थानके विभागसे वैखरी नामसे प्रसिद्ध होती है। क्रमशः बाह्यार्थवासना अथवा अविद्याके प्रभावसे यह घट, पट आदि अर्थके रूपमें विवृत्त होकर चक्षुरादि इन्द्रियोंकी गोचर होती है; अर्थात् शब्दब्रह्म अनादि अविद्यावासनात्मक उपप्लवके कारण भेदको प्राप्त होकर अर्थरूपमें विवर्तित होता है। वस्तुतः वाचकसे पृथग्भूत वाच्य है ही नहीं। वाच्यवाचक-विभाग काल्पनिक है। परन्तु काल्पनिक या अविद्याजन्य होनेपर भी विद्याके उपायरूपमें इसका ग्रहण करना पड़ता है। ज्ञानमात्र ही वागात्मक है, इसीलिए वाक्स्वरूप ही परमार्थ सिद्धान्त है।

पूर्वोक्त पश्यन्ती वैयाकरणोंका ब्रह्मतत्त्व है। यह निराकार, नियतरूप-हीन, देश, काल आदि परिच्छेदरहित, अक्रम तथा अनवच्छिन्न है— यही अद्वैत-तत्त्व है। क्रम अथवा भेदाभास ही संसारका रूप है—क्रमहीन पश्यन्ती स्वरूपतः संसारसे उत्तीर्ण है *।

प्राचीनकालमें शैवागममें अद्वैतवादका विशेष विवरण मिलता है। काश्मीर में प्रत्यभिज्ञा तथा स्पन्ददर्शनके नामसे शैवागम, शिवसूत्र तथा शिवदृष्टि आदि ग्रन्थोंके आधारपर जिस दर्शनशास्त्रका प्रादुर्भाव हुआ था, वह अद्वैत-प्रस्थानके ही अन्तर्गत है, परन्तु शङ्कराचार्यके अद्वैतवादसे किसी-किसी अंशमें वह विलक्षण है। शङ्कराचार्य शैवागम मानते थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र तथा सुरेश्वरका मानसोल्लास देखनेसे यह सिद्ध होता है। परन्तु स्वच्छन्दतन्त्र और क्षेमराजकृत उसकी उद्योतटीका तथा इस प्रकारके और-और शैवागमके ग्रन्थोंके समालोचनसे शिवाद्वैतवादका वैशिष्ट्य कुछ-कुछ हृदयमें आता है। आगममतमें आत्माका परमरूप चिदानन्दघन,

---

* व्याकरणसिद्धान्तके प्रधान आचार्य भर्तृहरि अद्वैतवादी थे, यह तो स्पष्ट ही है। उमामहेश्वरने स्वरचित तत्त्वदीपिका नामके ग्रन्थमें लिखा है—

"महाभाष्यं व्याचक्षाणो भगवान् भर्तृहरिरप्यद्वैतमेवाभ्युपगच्छति यथोक्तं शब्दकौस्तुभे स्फोटवादान्ते—तदेवं पक्षभेदे अविद्यैव वा ब्रह्मैव वा स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति व्युत्पत्त्या स्फोट इति स्थितम्। आह च—शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते।" Madras Triennial Catalogue, No. 5136.

स्वातन्त्र्यसार तथा परमशिवात्मक है। आगमविदोंके मतसे सांख्यके पुरुषमें तथा वेदान्तके ब्रह्मतत्त्वमें भी आत्माका यथार्थ स्वरूप प्रकाशमान नहीं है, क्योंकि पुरुष बहुसंख्य हैं और ब्रह्म विमर्शहीन है। इस दृष्टिसे सांख्यशास्त्रके पुरुषकी अवस्था एक प्रकार विज्ञानकैवल्यावस्थामात्र है। अवश्य, यह कैवल्यावस्था है, परन्तु यह आत्माका स्वरूप नहीं है। विवेकख्यातिरूप विज्ञानसे इस कैवल्यका आविर्भाव होता है, इसीलिए इसका नाम विज्ञानकैवल्य कहा जा सकता है। हाँ, इसमें भी दो मार्ग हैं—एक अधः और दूसरा ऊर्ध्व। अधोमार्गमें—यह अवस्था सांख्यके कैवल्यसे अभिन्नप्राय है—पशुत्वकी निवृत्ति नहीं होती, इसलिए कैवल्य होनेपर भी यह अशुद्धावस्था है। इस अवस्थामें आणवमल रह ही जाता है। यह अवस्था मायाके अन्तर्गत है। परन्तु दीक्षाके प्रभावसे जिस समय जीव समनाके ऊपर उत्थित होकर समग्र अध्वाओंका अतिक्रमण करते हैं उस समय कार्ममल, मायामल और आणवमल इन तीनों प्रकारके मलोंके समष्टिरूप निखिल बन्धन टूट जाते हैं, सब तरहकी वासनाओंकी निवृत्ति हो जाती है। उस समय आत्मा अपने सत्तामात्र स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। यह सत्ता प्रकाशात्मक है, इसके प्रतियोगी भावान्तर नहीं है। यह शुद्ध विज्ञान कैवल्यावस्था है और सांख्यके कैवल्यसे विशिष्ट है। इस अवस्थामें परम शिवके सदृश सामरस्य, अवस्थितिमय ज्ञानक्रियाके न रहनेपर भी आत्मामें स्वभावानुरूप ज्ञानक्रियाकी अभिव्यक्ति रहती है। ज्ञानक्रिया ही चैतन्य है, अत एव इस प्रकारके विशुद्ध कैवल्यमें चैतन्यकी किञ्चित् स्फूर्ति रहनेके कारण यह सांख्यके मलिन कैवल्यसे विशिष्ट है, क्योंकि आगमविदोंके मतानुसार सांख्योपदिष्ट कैवल्यमें ज्ञान क्रिया नहीं रहती। यह अवस्था मायाके ऊपर की है, नीचेकी नहीं है। जिस ज्ञानके प्रभावसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है, वह सब अवस्थाओंका संवेदनात्मक ज्ञान है। अर्थात् जब तक आदिसे अन्त तक समस्त अध्वाओंका अपने ज्ञानसे प्रत्यक्ष न किया जाय, तब तक उस शुद्ध कैवल्यावस्थाकी अनुभूति नहीं हो सकती। परन्तु जिस ज्ञानके प्रभावसे सांख्यका कैवल्य आविर्भूत होता है, वह इससे भिन्न प्रकारका ज्ञान है। वह माया और पुरुषका विवेकात्मक ज्ञान है। इस प्रकार कैवल्यमें ज्ञेयसे सम्बन्ध न रहनेके कारण यह

सदाशिवतत्त्वान्तर्गत मन्त्र तथा मन्त्रेश्वरकी अवस्थासे भी पृथक् है। अथच, इसमें स्वच्छन्द, चिदानन्दघन, परमशिवावस्थाकी भी अभिव्यक्ति नहीं है। आत्मा इस भूमिमें बोद्धा-मात्र है। आत्मव्याप्तिके द्वारा आत्मा इस विशुद्ध कैवल्यमें व्याप्त होकर उन्मना पदमें आरोपित होता है और उसके अनन्तर चिदानन्दघन शिवमय परमतत्त्वमें प्रतिष्ठित होता है। शुद्ध कैवल्यमें समनापर्यन्त सभी तरहके बन्धन उपशान्त रहते हैं। परन्तु उपशमका संस्कार ज्यों-का-ज्यों बना रहता है। उस समयमें उसीको अवच्छेदक मानना पड़ेगा। इसलिए कैवल्यावस्था भी सोपाधिक कोटिमें गिनी जा सकती है। परन्तु विद्यामयी उन्मना शक्तिकी व्याप्तिके प्रभावसे जब इस अवच्छेदककी निवृत्ति हो जाती है; तब अनवच्छिन्न, स्वतन्त्र, चिन्मय तथा आनन्दमय शिव भावका उदय होता है। यह दशा विश्वमयी होती हुई भी विश्वसे उत्तीर्ण है।

शैवाचार्यगण सांख्य-योगके पुरुष तथा वेदान्तके ब्रह्मको आत्माकी अपरावस्थामें मानते हैं। इनके मतमें ब्रह्म आत्माकी परापरावस्था भी नहीं है, परावस्थाकी तो बात ही क्या है? परमशिवावस्था ही आत्माकी परावस्था है। शैव लोग कहते हैं कि तादृशावस्था वेदान्तादि शास्त्रोंमें वर्णित नहीं हुई है। वस्तुतः वही अद्वय तत्त्व है। जीवकी पुर्यष्टक अथवा लिङ्गशरीरमें 'अहं' प्रतीति रहती है। जब तक जीवकी आत्मव्याप्ति, विद्याव्याप्ति, तथा शिवव्याप्ति पूर्णतया नहीं होती तब तक आत्मोपासनासे ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर परमशिवपदमें प्रतिष्ठित होनेकी सम्भावना नहीं है—"तैः शैवपाशुपतलाकुलादिभिः नानात्मवादिभिः शिवत्वं कल्पितम्। आत्मनां व्यापकत्वनित्यत्वामूर्त्तत्वचित्त्वस्रष्टृत्वाद्यनन्तधर्मसाम्येन शिवैकरूपाणामपि केनचित् कल्पनामात्रेण निर्युक्तिकेन भिन्नशिवरूपत्वमुच्यते। ते सर्वे व्याख्यातव्यापिकात्मोपासकाः शैवेऽस्मिन् अद्वयनये परमशिवं व्याख्यातस्वरूपं न गच्छन्ति, न तन्मयीभवन्ति। सांख्ययोग-वेदान्तवाद्यादयस्तु अपरदशावस्था एव, इति केन तेषामियत्पदप्राप्तिसम्भावनाऽपि" (स्वच्छन्दतन्त्रके ऊपर क्षेमराजकृत—उद्योतटीका ४।३९१–३९२)।

शिवाद्वयमतमें परमार्थ स्वतन्त्र चिदात्मा है, इसीलिए अज्ञानका स्वरूप इस दृष्टिसे शाङ्करमतसे किञ्चित् भिन्नरूपसे वर्णित होता है। इस मतमें भी अज्ञान ही संसारका एकमात्र हेतु है और ज्ञान मोक्षके प्रति एकमात्र कारण है। इस आगममें मूल अज्ञान आणवमल नामसे प्रसिद्ध है। बोध अथवा चिद्भावमें

स्वातन्त्र्यकी हानि एक प्रकारका अज्ञान है तथा स्वातन्त्र्यमें बोधका अभाव अथवा जड़त्व दूसरे प्रकारका अज्ञान है। अज्ञान अपूर्ण ज्ञानका नामान्तर है। यह परमेश्वरस्वरूपगोपनात्मक है। इससे आत्मा तथा अनात्माका अन्यथा अभिमान होता है। एकमात्र परमेश्वरके स्वातन्त्र्यसे ही इसका आविर्भाव होता है। पहले जो अज्ञान दो प्रकारका बतलाया गया है उसीको तान्त्रिक परिणामसे पौरुष तथा बौद्ध अज्ञान कहते हैं। दीक्षा प्रभृतिके द्वारा पौरुष अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे और तदनन्तर बौद्ध अज्ञानके आविर्भाव होनेसे जीवन्मुक्ति दशाका आविर्भाव होता है। केवल बौद्ध ज्ञानसे विशेष फल नहीं होता। परन्तु पौरुष ज्ञान निरपेक्ष होता हुआ मोक्षका कारण होता है। दीक्षामें पुरुषगत पाशका ही शोधन होता है, बुद्धिगत पाशका शोधन नहीं होता। बौद्ध अज्ञान दुरध्यवसायात्मक है। बौद्ध अज्ञान कर्मका कारण नहीं है, परन्तु कर्म ही बौद्ध अज्ञानका कारण है। केवल बौद्ध अज्ञानके निवृत्त हो जानेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। इस बौद्ध अज्ञानकी निवृत्तिके अनन्तर बौद्ध ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि यह शुद्ध है तथापि यह विकल्पनात्मक है और विकल्पमात्र ही संसार है। बुद्धिगत अज्ञानके—अनिश्चय तथा विपरीत ज्ञान—ये दो स्वभाव हैं। विकल्प अथवा सङ्कुचित ज्ञान ही पुरुषगत अज्ञानका स्वरूप है। इसीलिए संसारके मूल कारणरूपमें इसका निर्देश किया जा सकता है। दीक्षादिसे इसकी निवृत्ति हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु अनध्यवसायरूप बौद्ध अज्ञान जब तक निवृत्त नहीं होगा, तब तक दीक्षाकी सम्भावना ही कहां? तत्त्वशुद्धि तथा शिवसंयोजन ही दीक्षाका स्वरूप है। हेय तथा उपादेयका पहले निश्चय होनेसे ही यह हो सकती है। इसीलिए इस दृष्टिसे अध्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रधान माना जाता है। पुनः पुनः अभ्यासके फलसे बौद्ध ज्ञान पौरुष अज्ञानका भी नाश कर देता है। विकल्प ज्ञानकी पुनः पुनः आवृत्तिसे पर्यवसानमें अविकल्पक ज्ञानका आविर्भाव होता है। आत्मा प्रकाशस्वरूप है, इसमें विकल्पजन्य सङ्कोचके न रहनेसे इसे शिवस्वभाव मान सकते हैं। अतएव सर्वथा सभी वस्तुओंमें निश्चयात्मक सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है।

जिस समय पुरुषका पशुसंस्कार क्षीण हो जाती है और उसके आणव, कार्म्य तथा माय्य इन तीनों प्रकारके मलोंका क्षय हो जाता है, उस समय

सब तरहके बन्धनोंकी निवृत्ति हो जानेसे पुरुष परा संवित्के साथ तादात्म्यलाभ करता है। उस वक्त उसमें निर्विकल्पक ज्ञानका आविर्भाव हो जाता है। 'पूर्णोऽहम्' इत्याकारक विमर्श ही इसका स्वरूप है। कृत्रिम अहंकार प्रभृति विकल्पके अन्तर्गत हैं। परन्तु इसमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं रहता—इसीको पौरुष ज्ञान कहते हैं। दीक्षादिसे पौरुष अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर तादृश अज्ञानाभावरूप आत्मज्ञान अभिव्यक्त नहीं हो सकता, क्योंकि शरीरात्मक कार्म्म मल आत्मज्ञानकी अभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक है। देहान्तमें होनेपर उक्त प्रतिबन्धके न रहनेके कारण आत्मज्ञान अभिव्यक्त होता है—शिवत्वका लाभ हो जाता है।

परमेश्वरकी शक्तिका संचार (शक्तिपात) दीक्षाके निमित्त है और दीक्षा मुक्तिकी निमित्त है—

'तस्मात् प्रविततादस्मात् परस्थानविबोधनात्।
दीक्षैव मोचयत्यूद्र्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि ॥'

शक्तिसंचारके तीव्रत्वमें तारतम्य हो सकता है। तीव्रतमशक्तिके संचारसे अनुपायादि-क्रमसे दीक्षा होती है जिससे उसी वक्त कैवल्य प्राप्त हो जाता है।

शिवाद्वयशास्त्रके श्रवणसे जिस बौद्ध ज्ञानका उदय होता है उससे अज्ञान-जृम्भित बौद्ध ज्ञान विलीन होता है और जीवन्मुक्तिका उदय होता है। परन्तु अदीक्षितको यह बौद्ध ज्ञान हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसे तो शास्त्रके श्रवणमें ही अधिकार नहीं है। इसीलिए उसे शास्त्रावबोधनिमित्तक बौद्ध ज्ञान नहीं हो सकता। विशेषतः जिसका पौरुष ज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, उसको बौद्ध ज्ञानसे तादृश फल भी नहीं मिल सकता।

शक्त्यद्वयसिद्धान्तके विषयमें इस समय प्रायः सभी लोग विस्मृत हो गये हैं, परन्तु प्राचीनकालमें इस सिद्धान्तका प्रभाव दार्शनिक तथा धार्मिक साहित्यके ऊपर था। हम पहले संक्षेपमें शिवाद्वयवादके विषयमें कुछ कह आये हैं। वस्तुतः शिवाद्वयसिद्धान्तसे शाक्ताद्वैतमतका मूलतः कोई विशेष भेद नहीं है, जो कुछ है वह उपासनाका बहिरङ्ग भेदमात्र है। इसीलिए सोमानन्दकृत शिवदृष्टिकी टीकामें उत्पलदेवने शाक्तोंका 'स्वयूथ्यानद्वयवादिनः' कहकर वर्णन किया है, खण्डन नहीं किया। उसमें लिखा है—"यस्या निरुपाधिज्योतीरूपायाः शिवसञ्ज्ञया। व्यपदेशः परां तां त्वामम्बां नित्यमुपास्महे।" शाक्त लोग

शक्तिव्यतिरिक्तरूपसे शक्तिमान्का स्वीकार नहीं करते। वे लोग कहते हैं कि शक्तिमान् अथवा शिव वस्तुतः शक्तिका ही उपाधिविहीन परम अवस्थामात्र है।

शाक्ताद्वैतका विशेष परिचय प्राप्त करनेके लिए पाठकोंको चाहिये कि मालिनीविजय, स्वच्छन्दतन्त्र, शक्तिसूत्र, परात्रिंशिका, तन्त्रालोक, मातृकाचक्र-विवेक, योगिनीहृदय, त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड), वरिवस्यारहस्य आदि ग्रन्थ देखें। यद्यपि इनमें दो एक ग्रन्थोंके सिवा शेष सभी ग्रन्थ शङ्करसे अर्वाचीन ही हैं, तथापि इससे सम्प्रदायके अविच्छेदके कारण शाक्त सिद्धान्तकी प्राचीन धाराका परिचय मिल जायगा।

प्राचीन अद्वैतवादकी आलोचनाके सिलसिलेमें नाथसम्प्रदायके विषयमें भी दो एक बातें कह देना अप्रासङ्गिक न होगा। नाथ आचार्य कहते हैं कि इस मतके आदि गुरु नाथरूपी परमेश्वर हैं। मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, जालन्धर, चर्पटी, चतुरङ्गी, विचारनाथ प्रभृति सिद्धाचार्योंने अपने अलौकिक जीवन तथा ज्ञान-ऐश्वर्यके प्रभावसे इस मतका बहुत प्रचार किया था। अभिनव-गुप्ताचार्यने तन्त्रालोकमें जो अर्द्धत्र्यम्बकमार्ग अथवा तुरीयमार्गका उल्लेख किया है, किसीके मतमें, वह नाथमार्गका ही प्राचीन रूप है। किसी-किसी स्थानमें यह मत अतिमार्ग नामसे भी पुकारा जाता था। भैरव और भैरवीके अनन्तर लौकिक जगत्में मीननाथ (मच्छन्द) ही इसके आदि प्रचारक थे। ज्ञात होता है कि कामरूपक्षेत्र * इस मतका आदिप्रचार स्थान है। सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति, सिद्धसिद्धान्तसंग्रह, विवेकमार्तण्ड, नाथसूत्र, गोरक्ष-उपनिषत्, निरञ्जनपुराण, योगबीज, अमनस्क आदि ग्रन्थ इसी सम्प्रदायके हैं। किन्तु ये सब ग्रन्थ शङ्करसे प्राचीन हैं या नहीं, इसमें संशय है। अवधूत-सम्प्रदायके साथ नाथोंका सम्बन्ध था। यद्यपि कहीं-कहीं कापालिकोंकी निन्दा भी इस सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें दीख पड़ती है तथापि कुछ हेतुओंसे अनुमान किया

---

* तन्त्रमार्गके साथ-साथ कुलमार्ग भी अनादिकालसे ही प्रचलित है। यह कुलमार्ग अतिनय अथवा कालीनय भी कहीं-कहीं कहा गया है। रहस्यवित् ज्ञानियोंमें यह अर्द्धत्र्यम्बक-मठिका नामसे प्रसिद्ध था। भैरव (दक्षिणपीठनायक)—भैरवी—सिद्धमीन या मच्छन्द, इस क्रमसे यह मत जगत्में पहले प्रवृत्त हुआ था। तन्त्रालोककी टीकामें मच्छन्द तुरीयनाथ नामसे कहे गये हैं, क्योंकि ये चतुर्थमठके अध्यक्ष थे।

जाता है कि किसी विषयमें कापालिकोंके साथ नाथोंका सम्बन्ध भी था। यह प्रकृष्ट अद्वैतवाद है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आचार्य नित्यनाथने सिद्ध-सिद्धान्तपद्धतिमें सृष्टिके पूर्वकी स्थितिका जो वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने लिखा है कि उस समय ब्रह्मा आदि देवगण नहीं थे, पृथिवी, जल आदि पांच भूत भी नहीं थे, देश और काल भी नहीं थे, वेद तथा प्राज्ञ, चन्द्र, सूर्य, विधि, कल्प और नियति ये सब कुछ भी नहीं थे। उस समय केवल एकमात्र स्वप्रकाश सत् वस्तु ही थी, उसीको परम पद * कहते हैं। उसका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। इस ग्रन्थमें कर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, तत्त्वखण्ड, और निरञ्जनखण्ड, इस क्रमसे अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तका निर्णय किया गया है। नाथमतमें परतत्त्व या परब्रह्म अव्यक्त, अनाम और अनादिनिधन कहा गया है। उसकी एक स्वरूपभूता शक्ति (निज-शक्ति) है—यह उससे सर्वथा अभिन्न है। साधारणतः इसका इच्छारूपसे ज्ञान किया जाता है। स्वातन्त्र्य ही उसका स्वरूप है। उससे उन्मेषफलस्वरूप पराशक्तिका आविर्भाव होता है। परा शक्तिका विकाश अपरा शक्ति है। अपरा भूमिके अनन्तर अहन्ताकी वृद्धिसे सूक्ष्म शक्तिका उल्लास होता है और उसीसे संवेदनशीला कुण्डलिनी शक्तिका उन्मेष होता है। इन पांच प्रकारकी शक्तियोंमें से प्रत्येक शक्तिमें पांच-पांच गुणोंके रहनेसे समूल शक्तितत्त्वमें पञ्चविंशति गुण माने जाते हैं *। शक्तिके स्फुरणकी पूर्वावस्थामें ब्रह्म निर्गुण है—शक्तिकी स्फूर्ति तथा गुणोंका आविर्भाव समार्थक है। शक्तिके सदृश अनादि पिण्ड भी स्वरूपतः निर्गुण है, परन्तु शक्तिविभागके साथ-साथ उससे क्रमशः गुणमय परमानन्द, प्रबोध, चिद्रूप, प्रकाश तथा सोऽहं भावका विकाश होता है। यहां भी प्रत्येक भावमें पांच-पांच गुणोंका आविर्भाव होता है। इसीलिए सृष्टिमार्गमें अनादि पिण्ड भी पञ्चविंशतिगुणविशिष्ट हो जाते हैं। इस विषयका विस्तृत विवरण यहांपर देना अनावश्यक है।

---

* न ब्रह्मा विष्णुरुद्रा न सुरपतिसुरा नैव पृथ्वी न चापो नाग्निर्न -- वायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव कालः। नो वेदा नैव प्राणा न च रविशशिनौ नो विधिर्नैव कल्पः स्वज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानन्दमूर्ते ॥

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति, प्रारम्भ)

शङ्करसे परवर्ती प्राचीन वेदान्त

शङ्करके पश्चात् भट्टभास्कर तथा यादवप्रकाशका नाम विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है। भट्टभास्करने त्रिदण्डिमतके अनुसार वेदान्तसूत्रपर एक भाष्यकी रचना की थी। इनका आविर्भावकाल निश्चित नहीं है। परन्तु ९म शताब्दीमें ये जीवित थे, ऐसा अनुमान होता है *। ये भी भर्तृप्रपञ्चके सदृश समुच्चयवादी थे। भर्तृप्रपञ्चका मत समुच्चयवाद है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। भास्करका मत यह है कि केवल ज्ञानसे मोक्ष नहीं हो सकता, कर्मकी भी आवश्यकता है। ज्ञानकी उत्पत्ति कर्मसे नहीं होती, श्रवण-मननरूप साधनसे ही होती है। अतएव जैसे—ज्ञान के लिए यावज्जीवन शम,

---

* कोई-कोई लोग इन्हें १०म शताब्दीका लेखक समझते हैं (द्रष्टव्य—बड़ोदासे प्रकाशित आनन्दज्ञानकृत वेदान्तके तर्कसंग्रहकी भूमिका, पृ० १६)। उदयनाचार्यने कुसुमाञ्जलिके द्वितीय स्तवकमें 'ब्रह्मपरिणतेरिति भास्करगोत्रे युज्यते' यह कहकर उनके नाम तथा ब्रह्म-परिणामवादका उल्लेख किया है। उदयनने ९०६ शकाब्द या ९८४ खीष्टाब्दमें लक्षणावलीकी रचना की थी, अत एव १०म शताब्दीके पूर्व, अथ च शङ्करके अनन्तर इनका आविर्भाव हुआ था। परन्तु किसी-किसीका मत है कि भास्कर शङ्करके समकालीन थे और उसी समय उन्होंने शङ्करमतका खण्डन किया था। इन लोगोंके मतमें शङ्कराचार्यने गीताभाष्यके द्वितीय अध्यायके प्रारम्भमें जो ज्ञानकर्मसमुच्चयवादका खण्डन किया है, वह भास्करका मत है। भास्कराचार्य वाचस्पतिके पूर्ववर्ती थे, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें (३।३।२९) भास्करका वचन है—'यदि पुण्यमपि निवर्तते किमर्था तर्हि जातिः ? इत्याशङ्क्य उच्यते' इत्यादि। वाचस्पतिमिश्रने भामतीमें उसका उल्लेख किया है। यथा—'ये तु पुण्यमपि निवर्तते किमर्था तर्हि जातिः, इत्याशङ्क्य सूत्रमवतारयन्ति' इत्यादि। यहांपर 'ये' इस पदसे भास्कराचार्य ही अभिप्रेत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि यह वचन भास्कर-भाष्यमें मिलता है। वाचस्पतिका समय ८९८ संवत् या ८४१ ई० है। इससे यह सिद्ध होता है कि भास्कर इससे पहले ही विद्यमान थे और इससे पहले ही उन्होंने अपने ग्रन्थकी रचना की थी। गीताके ऊपर एक भास्करभाष्यकी पुस्तक मिलती है। इसकी हस्तलिखित प्रति गवर्नमेण्ट संस्कृत कालिज, बनारसमें विद्यमान है। इसके अतिरिक्त दिवाकरभट्टके पुत्र, श्रीकण्ठके शिष्य, एक और भट्टभास्कर नामक आचार्यका पता चलता है। उन्होंने शिवसूत्रपर एक वार्तिक बनाया था। वे काश्मीरके शैवाचार्योंमें अन्यतम थे। इनका जन्मकाल अभिनव गुप्तके पूर्व है। इन्होंने भी गीताके ऊपर एक भाष्यकी रचना की थी, किन्तु वह पुस्तक इस समय उपलब्ध नहीं है। गीताके १८ अ० के २य श्लोकको टीकामें अभिनवगुप्ताचार्यने एक और भास्करका उल्लेख किया है। ये वेदान्ती भास्कर थे अथवा शैव भास्कर थे, इसका निश्चय नहीं है।

दम आदिका अनुष्ठान आवश्यक है, नहीं तो अपवर्ग नहीं मिल सकता—वैसे ही उसके लिए आश्रमकर्मानुष्ठान भी आवश्यक है। कर्मोंका त्याग किसी अवस्थामें उचित नहीं है। श्रुतिमें कहींपर भी सभी कर्मोंके त्यागका उपदेश नहीं मिलता। 'पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति' इस श्रौत वचनसे शाङ्करसम्प्रदायवाले अनुमान करते हैं कि निखिल कर्मका त्याग ही श्रुतिका सिद्धान्त है। परन्तु भास्करका कथन यह है कि इसमें कर्मत्यागका प्रसङ्ग ही नहीं है। इसमें पुत्रादिलिङ्गक गार्हस्थ्य आश्रमसे आश्रमान्तरकी प्रतिपत्तिकी बात कही गई है। स्मृतिमें इसकी व्यवस्था भी है। उसीके अनुसार इस वचनका आशय समझना चाहिए, नहीं तो 'भिक्षाचर्य' पदसे बौद्ध, जैन प्रभृति अवैदिक सम्प्रदायोंका भिक्षाचरण मानना पड़ेगा। स्मृतिमें त्रिदण्ड, यज्ञोपवीत प्रभृतिकी व्यवस्था उत्तम आश्रमके लिए है। सर्वकर्मत्यागी केवल ज्ञानसे ही अपवर्ग-लाभ करते हैं, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि श्वेताश्वतरका वचन वस्तुतः इसका समर्थन नहीं करता—'तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्। अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम्॥' उपनिषत्का यह वचन कर्मत्यागके अनुकूल नहीं माना जा सकता, क्योंकि आश्रमलङ्घनकारीको अत्याश्रमी कहनेसे भाषाका अपव्यवहार ही होता है। अपराधी प्रायश्चित्तार्ह है, उसकी योग्यता किसी दृष्टिसे नहीं मानी जा सकती। और पक्षान्तरमें यदि 'अत्याश्रमी' शब्दसे ज्ञानीका ग्रहण किया जाय, तो वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि उस अवस्थामें 'प्रोवाच' पदका प्रयोग नहीं हो सकता। भास्करने युक्तियोंसे सिद्ध किया है कि कर्मका त्याग नहीं हो सकता, और शास्त्रका भी उस प्रकारका अभिप्राय नहीं है। वेदान्तवाक्यसे केवल अर्थज्ञान होता है, उससे सांसारिक सब कुछ निवृत्त नहीं होता। जब तक उपासना अथवा निदिध्यासन आदि नहीं किये जाते, तब तक क्लेशोंका बीज दग्ध नहीं होता। विद्या अथवा ज्ञान अपवर्गके उपयुक्त साधन हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु भास्करके मतमें विद्याका फल शङ्करमतसे विलक्षण है, क्योंकि भेदज्ञानरूप अविद्याकी निवृत्ति करके विद्या मुक्तिकी साधक नहीं होती है। वाक्यार्थज्ञानसे निखिल द्वैतज्ञान निवृत्त नहीं होता। जब तक शरीरका सम्बन्ध रहता है, तब तक शरीर, इन्द्रिय, मन

प्रभृतिसे रूप, रस आदिका ज्ञान अवश्य ही उत्पन्न होगा। परन्तु देहपातके अनन्तर भेदज्ञान पूर्णरूपसे निवृत्त हो जाता है और सर्वज्ञत्व प्रभृति पारमेश्वर धर्मोंका आविर्भाव होता है—लौकिक तथा अलौकिक सभी कर्म उस समय निवृत्त हो जाते हैं। अत एव जब तक 'मेरा शरीर' इत्याकारक बोध रहेगा, तब तक आश्रमोचित कर्म करना ही पड़ेगा। कर्तृत्व, भोक्तृत्व प्रभृति औपाधिक हैं। जब तक उपाधि—शरीर—वर्तमान रहेगी, तब तक उनका अपाय नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञानीको कर्तृत्वमें अभिमान नहीं रहता और अज्ञानीके लिए अभिमान स्वाभाविक है, यही दोनोंमें भेद है। भास्करके मतमें जीवदशामें ठीक ठीक मुक्ति नहीं होती। राग-द्वेषसे किसी प्रकारसे छुटकारा अवश्य मिल जाता है, किन्तु आत्यन्तिक मुक्ति अथवा ब्रह्मभावापत्ति नहीं होती। उसके लिए ज्ञान और कर्म दोनों ही अपेक्षित हैं। ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति होती है, परन्तु भेदज्ञान निवृत्त नहीं होता। प्रारब्ध कर्म रह ही जाता है। पूर्व जन्मोंका—वर्तमान जन्मके ज्ञानोदयके पूर्ववर्ती समयका—संचित कर्म नष्ट होता है, तथा ज्ञानोदयके उत्तरकालीन कर्मसे सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु ज्ञानशक्तिसे प्रारब्धका नाश नहीं होता है। यथा—'अग्निः अभ्रपटलं न दहति, इन्धनं तु दहति—कोऽत्र पर्यनुयुज्येत, विचित्रा हि शक्तयो भावानाम्'। प्रारब्धका नाश न होनेसे देहावस्थाकालमें जीवका कर्तृत्व और भोक्तृत्व अनुवृत्त ही रह जाता है। अत एव कर्मसहित विद्या ही अपवर्गकी साधन है, केवल विद्या नहीं—'समुच्चिताभ्यामेव ज्ञानकर्मभ्यामविद्यानिवृत्तिद्वारेण अपवर्गो व्यज्यते नान्यतरेण'।

भास्कर कहते हैं कि श्रवण और मननका पुनः पुनः अभ्यास करनेसे 'तत्' और 'त्वम्' पदार्थकी व्युत्पत्ति होकर आत्मस्वरूपका ज्ञान होता है। यह सबको नहीं होता। जिसके चित्तमें संस्कार अपटु है वह एक ही बारमें ब्रह्मात्मभावका अनुभव नहीं कर सकता। जब तक अविद्या रहती है तब तक कर्तव्य रह ही जाता है। इसके निवृत्त हो जानेपर जब ब्रह्मभावका उदय होता है, तब किसी प्रकारका कर्तव्य शेष नहीं रहता। भास्करका कहना है कि साक्षात्कारात्मक ज्ञानके लिए केवल एक ही बार श्रवण अथवा मनन करना पर्याप्त नहीं है।

उनके मतमें प्रपञ्च परमात्माका अवस्थाविशेष है। यह सत्य है, तथा

भेद भी सत्य है। इसका आश्रयण करके ही सभी व्यवहार निष्पन्न होते हैं। जीवात्मा तथा परमात्मामें स्वभावतः अभेद ही है, परन्तु उपाधिके कारण भेद आ जाता है। उपाधिके निवृत्त हो जानेपर भेदभाव छूट जाता है— यही मुक्ति अथवा शुद्ध परमात्मरूपमें स्थिति है।

भास्कर ब्रह्मका स्वाभाविक परिणाम मानते हैं। ब्रह्मके शक्तिविक्षेपसे ही सृष्टि और स्थितिका व्यापार निरन्तर चल रहा है। जैसे सूर्य अपनी रश्मियोंका विक्षेप करते हैं वैसे ही ब्रह्म भी अपनी अनन्त और अचिन्त्य शक्तियोंका विक्षेप करते हैं। ब्रह्मके एतादृश परिणामव्यापारका फल ही यह जगत् है। परिणाम ब्रह्मका स्वभाव है। निरवयव वस्तुका परिणाम नहीं हो सकता, यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि परिणामका एकमात्र प्रयोजक स्वभाव है। सावयवत्व नहीं है। क्षीरसे दधिरूप परिणाम होता है, उसका यह कारण नहीं है कि क्षीर सावयव है। परन्तु यह उसका स्वभाव ही है। यदि सावयवत्वको परिणामके कारणरूपसे स्वीकार किया जाय, तो जलके दधिरूप परिणामका प्रसङ्ग आवेगा। भास्कर कहते हैं कि वस्तुतः सूक्ष्म विचार करनेसे प्रतीत होता है कि सावयव वस्तुका परिणाम हो ही नहीं सकता, निरवयवका ही परिणाम होता है—'अप्रच्युतस्वरूपस्य शक्तिविक्षेपलक्षणः। परिणाम यथा तन्तुनाभस्य पटतन्तुवत्'। जैसे अच्युतस्वरूप तन्तु ही पटरूपमें अवस्थित होता है, और जैसे अच्युतस्वभाव आकाशसे ही वायुकी उत्पत्ति होती है, वैसे अच्युतस्वभाव ब्रह्मसे ही जगत्का आविर्भाव होता है—"चेतनस्य सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेः स्वतन्त्रस्य शास्त्रैकसमधिगम्यस्य जगत्कारणस्य परिणामो व्यवस्थाप्यते, स हि स्वेच्छया स्वात्मानं लोकाहितार्थं परिणमयन् स्वशक्त्यनुसारेण परिणमयति।" साधारण मनुष्यकी बुद्धिमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है जिससे वह वस्तुशक्तिका परिच्छेद कर सके। परमेश्वरकी स्वाभाविक शक्ति अचिन्त्य है। कार्य-कारणभावके विषयमें भास्कर कहते हैं कि कार्य सत् है, कारण ही तत्-तत् अवस्थाको प्राप्त होकर कार्यका रूप धारण करता है। अवस्था और अवस्था-वान्में—धर्म और धर्मीमें आत्यन्तिक भेद नहीं है, दोनों एक ही वस्तु हैं। गुणहीन द्रव्य तथा द्रव्यहीन गुण—दोनोंका ही सम्भव नहीं है। उपलब्धिसे भेदाभेदका पता चलता है। समुद्र जलरूपमें एक है, किन्तु तरङ्गादिरूपमें नाना है। परन्तु तरङ्गादि समुद्रके ही धर्म हैं, समुद्र तरङ्गादिका धर्म नहीं है। इसी-

लिए ये समुद्रके शक्तिरूपमें माने जाते हैं। शक्ति और शक्तिमान्में अनन्यत्व और अन्यत्व दोनों ही सिद्ध हैं शक्तिमान्के एक होनेपर भी शक्तिगत भेद-का प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता है। इसीलिए भास्करने कहा है—'तस्मात् सर्वमेकानेकात्मकम्, नात्यन्तं भिन्नमभिन्नं वा'।

कारणकी दो प्रकारकी अवस्था है, एक स्वरूपावस्था और दूसरी कार्यावस्था। ईश्वरकी शक्ति भोक्तृ और भोग्यरूपसे दो प्रकारकी है। उसकी भोक्तृ-शक्ति जीवरूपमें अवस्थित रहती है और भोग्यशक्ति आकाशादि अचेतनरूपमें परिणामको प्राप्त होती है *।

पहले कहा गया है कि उपासना अथवा योगाभ्यासके बिना अपरोक्ष ज्ञानका लाभ नहीं होता इसका स्वरूप क्या है, यह जानना चाहिए। भास्करने अपने ग्रन्थमें इसका परिचय दिया है। वाक्, मन, बुद्धि, महान् आत्मा और शान्त प्रपञ्चातीत ब्रह्मतत्त्व—भास्करके मतमें निवृत्तिमार्गका यही क्रम है। सबसे पहले वाक् अथवा निखिल बाह्येन्द्रियोंके व्यापारका मनके अन्दर संयमन करना होगा। सङ्कल्प, काम, स्मृति प्रभृति वृत्तियोंका जो आश्रय है, वही मन है। इन्द्रियव्यापारके निरुद्ध हो जानेपर मनका ज्ञानात्मक बुद्धिमें † उपसंहार करके बुद्धिका महान् आत्मा या भोक्तामें स्थापन करना चाहिए। सबके अन्तमें इस महान् आत्माको अर्थात् जीवात्माको शान्त प्रपञ्चातीत सर्वव्यापी अमृतरस परमात्माके साथ संसृष्ट करना चाहिए और 'स एवाहमस्मि' इत्याकारक भावना करनी चाहिए—यही योग अथवा उपासना है, जिसका फल अपरोक्षज्ञान अथवा विष्णुके परमपदकी प्राप्ति है। सनकादिकृत योगशास्त्रमें भी यही योग कहा गया है, क्योंकि उस मतमें ध्यान, धारणा तथा समाधि ही योगका अङ्ग है। इसमें अभिप्रेत ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए चित्तकी एकाग्रता-को ध्यान कहते हैं। प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि और मनके युगपत् संधानको धारण

---

* भास्करमतानुसार भेदाभेदमें जो विरोध है, उससे हानि नहीं है, क्योंकि प्रमाणके प्रतीतिसिद्ध होनेपर विरोध अथवा अविरोधका विचार अनावश्यक है—

'प्रमाणतश्चेत् प्रतीयेत को विरोधोऽयमुच्यते।
विरोधे चाऽविरोधे च प्रमाणं कारणं मतम्॥

† भास्करके मतमें अध्यवसाय इसका स्वरूप और अहङ्कार इसका धर्म है। भास्कर कहते हैं—अन्तःकरण दो प्रकारका है—बुद्धि और मन।

कहते हैं। श्रद्धा और प्रयत्नके साथ-साथ नित्य चिन्ताको समाधि कहते हैं। भास्करने अपने ग्रन्थमें सनकके योगमहत्त्वव्यञ्जक वचनका भी उद्धार किया है।

जयतीर्थकी गीताटीकासे (२।५४) प्रतीत होता है कि भास्करके मतानुसार ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर ये तीनों देव परमात्माके स्वरूप नहीं हैं, किन्तु अवयवभूत हैं। यही त्रिमूर्ति-उत्तीर्ण-ब्रह्मवाद नामसे प्रसिद्ध है। वासुदेव अथवा कृष्ण परमात्मा नहीं हैं—इस प्राचीन मतका जयतीर्थने अपनी गीता-टीकामें उद्धार किया है (गीताटीका १३।१२)। किसी-किसीका विश्वास है कि यह प्राचीन मत ब्रह्मसूत्रभाष्यकार भास्कराचार्यका ही है। जयतीर्थने उसी टीकामें (२।४७) भास्करके निष्कामकर्मविषयक मतका भी उद्धार किया है।

भास्करके मतमें सृष्टिक्रम यों है—(१) अव्याकृत आकाश अथवा भूत-सूक्ष्म। सर्वज्ञ सर्वशक्ति परमात्मा प्राणियोंके भोगकालको समासन्न समझ कर पहले इनकी सृष्टि करते हैं। (२) हिरण्यगर्भ। (३) हिरण्यगर्भमें अनुप्रवेश तथा उसी रूपमें अवस्थिति। (४) आकाशादिक्रमसे ब्रह्माण्डसृष्टि। (५) स्थावरान्त समग्र जगत्की सृष्टि। सृष्टि प्राणियोंके कर्मका अनुसरण करनेवाली और स्वाभाविक है। सृष्टिके आरम्भमें परब्रह्मके अनुग्रहसे उसमें प्रतिष्ठित वेद प्रजापतिके मनमें आविर्भूत होता है। सृष्टिके साथ-साथ वेदका भी आविर्भाव हो जाता है।

मुक्ति दो प्रकारकी है—(१) सद्योमुक्ति और (२) क्रममुक्ति। दोनों ही उपासनाके फलरूप और अनावृत्तिकी साधक हैं अर्थात् दोनों प्रकारोंमें किसी प्रकारकी मुक्तिका लाभ होनेसे मानव-आवर्तमें लौटकर आना नहीं पड़ता। जो साक्षात् अर्थात् कारणब्रह्मके उपासक हैं वे सद्योमुक्ति-लाभ करते हैं। जो परम्परासे ब्रह्मोपासना करते हैं—जो कार्यब्रह्मके उपासक हैं—वे सबसे पहले अर्चिरादिमार्गसे (देवयानपथसे) हिरण्यगर्भमें प्रवेश करते हैं। इसके बाद अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर वे ही ज्ञानप्रकर्ष प्राप्तकर हिरण्यगर्भके साथ-साथ एकत्र मुक्तिलाभ करते हैं। हिरण्यगर्भ ही कार्यब्रह्म है। महाप्रलयमें कार्यब्रह्मके नष्ट हो जानेपर हिरण्यगर्भ जिस समय परम पदको प्राप्त होते हैं उसी समय हिरण्यगर्भके अङ्गीभूत पूर्वोक्त जीव भी परमपदको प्राप्त होते हैं।

मुक्त पुरुषोंमें जो लोग परमकारणसमुच्चयको प्राप्त होते हैं उनके ऐश्वर्यकी अवधि नहीं रहती, परन्तु जो मुक्त होकर भी पृथक् रहते हैं—जिनकी कार्यब्रह्ममें अवस्थिति होती है—उनके ऐश्वर्यकी अवधि है *। इसीलिए तादृश मुक्त पुरुष जगत्के व्यापारमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। एकमात्र नित्यसिद्ध परमेश्वरका ही इसमें अधिकार है। अणिमादि सिद्धियां इनकी ऐश्वर्य हैं। स्वातन्त्र्यात्मक ऐश्वर्य एकमात्र परमेश्वरका ही है। सूर्यमण्डल ही आधिकारिक मण्डल है, क्योंकि यह अधिकारमें—लोकानुग्रहव्यापारमें—प्रवृत्त है। इसका नामान्तर संवत्सरचक्र अथवा वैराजशरीर है। इसमें सब लोक, सब वेद तथा सब देवगण पूर्णतया संनिविष्ट हैं। कार्य ब्रह्मलोकपर्यन्त ही लिङ्ग शरीर रहता है। इसीलिए वस्तुतः यह भी संसारमण्डलके ही अन्तर्गत है। लिङ्ग सूक्ष्म होनेके कारण शीघ्र लीन नहीं होता, परन्तु कार्यब्रह्मलोकके अतिक्रमण करनेसे लिङ्गकी निवृत्ति हो जाती है। उस समय करणवर्ग नहीं रहता। कारणावस्थामें सब एकाकार हो जाता है। भास्करके मतसे मोक्ष ससम्बोध है अर्थात् मोक्षमें ज्ञान रहता है। वे कहते हैं कि यही श्रौत मत है। मोक्षके विषयमें शङ्कराचार्यके निःसम्बोध पक्षको भास्कर मानते ही नहीं।

यादव भी भेदाभेदवादी थे। यह कहना कठिन है कि ये यादवाचार्य (११०० ख्री०) रामानुजके गुरु काञ्चीनिवासी यादवप्रकाशसे भिन्न हैं या नहीं। श्रुतप्रकाशिकाकार सुदर्शनका मत यह है कि ब्रह्मसूत्रमें (१।४।२०) जो आश्मरथ्यका मत कहा गया है, उसीके आधारपर यादवप्रकाशका सिद्धान्त प्रकाशित हुआ था। वेदान्तदेशिकाचार्यने अपने परमतभङ्ग नामक ग्रन्थमें भास्कर तथा यादवप्रकाशके मतोंकी समालोचना की है। व्यासराजने तात्पर्यचन्द्रिकामें भी यादवप्रकाशके मतका उल्लेख किया है। यादवप्रकाशने ब्रह्मसूत्र तथा गीताके ऊपर भेदाभेद पक्षके अनुसार भाष्य रचना की थी। यादव निर्गुण ब्रह्म तथा मायावाद नहीं मानते थे। इनके मतमें ज्ञानकर्मसमुच्चय ही मुक्तिका साधन है—शुद्ध ज्ञान अथवा शुद्ध कर्मसे मुक्ति नहीं

---

* कार्य ब्रह्मलोकमें मुक्त पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार शरीरका धारण और परिहार भी कर सकते हैं। उभय अवस्थामें ही काम—विषयोंका भोग—मनके द्वारा होता है। शरीरी अवस्थामें—जाग्रदवस्थाके सदृश स्थूलभावसे उपभोग होता है और विदेह अवस्थामें स्वप्नवत् होता है।

अन्वयार्थप्रकाशिका ही प्रधान हैं। राघवानन्दसरस्वतीकृत विद्यामृतवर्षिणी तथा विश्ववेदकृत सिद्धान्तदीप अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। पञ्चप्रक्रिया नामक एक और ग्रन्थ भी सर्वज्ञात्ममुनिरचित है [द्रष्टव्य—Madras Triennial Catalogue, No. 3619 B], परन्तु उसका प्रामाण्य सर्वथा निश्चित नहीं है।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पतिमिश्रका नाम भारतीय दर्शनके इतिहासमें बड़े सम्मानके साथ लिया जाता है। उन्होंने वैशेषिक दर्शनको छोड़कर और सभी दर्शनोंपर उत्कृष्ट व्याख्यान ग्रन्थ बनाये थे। वेदान्तशास्त्रमें वाचस्पति-मिश्रके दो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक मण्डनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिके ऊपर ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा नामकी टीका और दूसरी शङ्कराचार्यके शारीरकभाष्यके ऊपर भामती *। ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा इस समय उपलब्ध नहीं है, परन्तु भामती सर्वत्र प्रसिद्ध है। न्यायकन्दलीकार श्रीधराचार्यने भी अद्वयसिद्धि नामक एक वेदान्तग्रन्थका निर्माण किया था (द्रष्टव्य—न्यायकन्दली, पृ० ५)। अव्ययात्माके शिष्य विमुक्तात्मा प्राचीनकालमें एक प्रसिद्ध वेदान्ताचार्य हो गये हैं। इनका इष्टसिद्धि नामक ग्रन्थ शाङ्करवेदान्तके मूल ग्रन्थोंमें परिगणनाके योग्य है। मधुसूदन-सरस्वतीने अपनी अद्वैतसिद्धिका सिद्धिनामान्त चतुर्थ ग्रन्थरूपमें उल्लेख किया है। ब्रह्मसिद्धि (मण्डनकृत), नैष्कर्म्यसिद्धि (सुरेश्वरकृत), इष्टसिद्धि (विमुक्तात्मकृत), इन तीन प्राचीन सिद्धिनामान्त ग्रन्थोंकी अपेक्षा ही उन्होंने अपने ग्रन्थको चतुर्थ कहा है। † इष्टसिद्धिके ऊपर आचार्य ज्ञानोत्तमकी टीकाने प्राचीन कालमें ही अधिक ख्याति प्राप्त कर ली थी। ज्ञानोत्तमने इस टीकाके अतिरिक्त नैष्कर्म्यसिद्धिपर चन्द्रिका और ब्रह्मसूत्रशारीरकभाष्यपर विद्याश्री नाम

---

* भामतीके ऊपर अमलानन्द अथवा व्यासाश्रम रचित कल्पतरु प्रसिद्ध टीका है, मुद्रित भी है परन्तु इसके अतिरिक्त भामतीतिलक नामकी एक और टीका मिलती है, जिसके रचयिताका नाम अल्लाल है। अल्लालके पिताका नाम त्रिविक्रमाचार्य और माताका नाम नागमाम्बा था। ये किस देश और किस समयके थे इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ है। नामसे प्रतीत होता है कि ये दाक्षिणात्य थे। अपने गुरु व्यासाश्रमको उन्होंने नमस्कार किया है, इससे यह प्रतीत होता है कि ये कल्पतरुकारसे अर्वाचीन थे। इनके गुरुका नाम प्रज्ञानारण्ययोगी था, ऐसा प्रतीत होता है।

† थोड़े ही दिन हुए कि बड़ौदासे गायकवाडग्रन्थमालामें ज्ञानोत्तमकी टीकाके साथ इष्टसिद्धिका प्रकाशन हुआ है।

दो टीकाएँ रची थीं। वे ज्ञानोत्तम चित्सुखाचार्यके गुरु गौड़ेश्वराचार्य ज्ञानोत्तमसे भिन्न हैं। वे चोलदेशवासी थे। उन्होंने उसमें अपने पिताका नागेश नामसे उल्लेख किया है। अत एव किसी-किसीका मत है कि उन्होंने यह टीका गृहस्थाश्रमावस्थामें ही बनाई थी। यदि वे संन्यासावस्थामें टीका लिखते तो पिताका नाम निर्देश न कर गुरुका नाम निर्देश करते। प्रसिद्धि है कि ये ज्ञानोत्तम, सर्वज्ञात्मा और तत्त्वबोधके बाद काञ्ची सर्वज्ञपीठके अध्यक्ष हुए थे।

शङ्करके साक्षात् शिष्य पद्मपादाचार्यने शारीरकभाष्यके एक भागपर पञ्चपादिका नामक एक व्याख्यान लिखा था। उसके ऊपर परमहंसपरिव्राजकाचार्य अनन्यानुभवके शिष्य यतिवर प्रकाशात्माने विवरण नामसे एक उत्कृष्ट व्याख्यान ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रन्थका महत्त्व इतना अधिक हो गया था कि वेदान्तदर्शनके इतिहासमें भामती प्रस्थानके अनुरूप विवरणका एक पृथक् प्रस्थान ही प्रकाशित हो गया। प्रकाशात्माने शारीरक भाष्यके ऊपर न्यायसंग्रह नामकी एक टीका लिखी थी। शाब्दनिर्णय नामसे प्रकाशात्माका एक और भी ग्रन्थ इस समय उपलब्ध होता है। न्यायसंग्रह और शाब्दनिर्णयके प्रकाशित हो जानेपर वेदान्तशास्त्रके प्राचीन समयका बहुत-सा विवरण मालूम हो जायगा, ऐसी आशा है। उत्तमामृतयतिके शिष्य ज्ञानामृतयतिने सुरेश्वरकृत नैष्कर्म्यसिद्धिके ऊपर विद्यासुरभि नामक एक सुन्दर टीका-ग्रन्थकी रचना की थी। इस समय यह ग्रन्थ उपलब्ध तो है, परन्तु अभी तक इसका प्रकाशन नहीं हुआ।

नैषधचरितके कर्त्ता श्रीहर्षका नाम सर्वत्र ख्यात ही है, क्योंकि अति प्राचीनकालसे ही इस काव्य ग्रन्थके पठन-पाठनका सम्प्रदाय चला आ रहा है। श्रीहर्षने खण्डनखण्डखाद्य नामसे एक उत्कृष्ट खण्डनात्मक प्रकरण ग्रन्थकी रचना की थी। यद्यपि अभिनव वाचस्पतिमिश्रने खण्डनोद्धार नामक ग्रन्थमें तथा और भी कई एक नैयायिकोंने विभिन्न समयमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे इस ग्रन्थके निराकरणके लिए यत्न किये थे, तथापि खण्डनकी कीर्ति लेशमात्र भी मलिन नहीं हुई। शङ्करमिश्र जैसे नैयायिकने खण्डनके ऊपर टीका लिखी थी, यह खण्डनके ही महत्त्वका परिचायक है। अद्वयाश्रमके शिष्य रामाद्वयने वेदान्तकौमुदी नामकी ब्रह्मसूत्रके प्रथम ४ अधिकरणोंके ऊपर एक आलो-

चनात्मक टीका बनाई थी। सिद्धान्तलेशसंग्रह तथा अन्यान्य परवर्ती ग्रन्थोंमें कौमुदीकारके नामसे जिस आचार्यके मतका उल्लेख किया गया है वे वेदान्त-कौमुदीकार रामाद्वय ही हैं *।

शारीरकभाष्यके ऊपर रामानन्दतीर्थके शिष्य अद्वैतानन्दका ब्रह्मविद्याभरण नामक एक उच्चकोटिका व्याख्यान ग्रन्थ है। (कुम्भकोणम्से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है) आत्मवासके शिष्य आनन्दबोधभट्टारक तो एकमात्र न्याय-मकरन्दके नामसे ही अमर हो गये हैं। चित्सुख आदि बड़े बड़े आचार्योंने इसके ऊपर टीकाएँ लिखी हैं। न्यायदीपावली, प्रमाणरत्नमाला तथा प्रकाशात्मयतिके शाब्दनिर्णयपर दीपिका नामकी टीका—ये इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। चित्सुखाचार्यके गुरु गौडेश्वराचार्य ज्ञानोत्तमके किसी ग्रन्थकी उपलब्धि अभी तक नहीं हुई है। परन्तु ज्ञानोत्तम भी उस कालमें प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंमें गिने जाते थे। चित्सुखकी तत्त्वप्रदीपिकासे पता चलता है कि ज्ञानोत्तमने न्यायसुधानामक एक दर्शनग्रन्थकी रचना की थी। इसी प्रकार प्रत्यक्-स्वरूपाचार्यकृत नयनप्रसादिनी टीकासे भी ज्ञानोत्तमकृत ज्ञानसिद्धि नामक दूसरे ग्रन्थका परिचय मिलता है। चित्सुखाचार्य तत्त्वदीपिका नामक एक ही ग्रन्थसे जगत्विख्यात हो गये हैं। इस समय भी वेदान्तज्ञसमाजमें इस ग्रन्थका प्रचार तथा समादर अतुलनीय है। परन्तु चित्सुखने और भी बहुतसे ग्रन्थ बनाये थे। उन्होंने शारीरकभाष्यके ऊपर भाव-प्रकाशिका, मण्डनकी ब्रह्मसिद्धि और सुरेश्वरकी नैष्कर्म्यसिद्धिपर क्रमसे अभिप्रायप्रकाशिका तथा भावतत्त्वप्रकाशिका नामक टीकाएँ लिखी थीं। आनन्दबोधके न्यायमकरन्द तथा प्रमाणरत्नमालाके ऊपर उनकी एक टीका मिलती है। प्रकाशात्माके पञ्चपादिकाविवरणपर चित्सुखकी भावद्योतनी नाम-की टीका है। इसके अतिरिक्त अधिकरणसंगति तथा †अधिकरणमञ्जरीनामक छोटे-छोटे और दो ग्रन्थ उनके हैं। चित्सुखाचार्यने विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवत-पर भी सुन्दर व्याख्यान लिखे थे। इन्होंने खण्डनखण्डखाद्यके ऊपर एक उत्कृष्ट

---

* यह ग्रन्थ भी उपलब्ध है, परन्तु इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है।

† ये दो ग्रन्थ मद्राससे प्रकाशित Journal of Oriental Research के पञ्चम खण्डमें प्रकाशित हुए हैं। काशी संस्कृत कॉलेजमें अधिकरणमञ्जरीकी १५२५ संवत्में लिखी गई एक प्रति है, उसमें उसका नाम अधिकरणमणिमञ्जरी लिखा है।

सम्पन्न परिपूर्ण हो जाता है; और वह स्वयम् ब्रह्ममय हो जाता है। सब विस्तार को एक मूल में बंधे देखना—यह 'फ़िलासोफी' है, ज्ञान, प्रज्ञान, है; एक मूल से सब के विस्तार को देखना, विशेष के साथ जानना, यह 'सायंस' है, विज्ञान है।[1] उस एक के जानने से सब वस्तु जानी जाती है। उसी आत्मा का दर्शन करना चाहिये। उसका दर्शन हो जाने पर हृदय की गाँठ कट जाती है, संशय दूर हो जाते हैं, कर्म क्षीण हो जाते हैं।"

'दर्शन' प्रयोग । व्यवहार में

यह सिद्धांत होकर भी, पुनः इस संशय में पड़ गया, कि आत्मदर्शन का प्रयोजन, उस का फल, क्या है; केवल आत्मदर्शी जीवात्मा की प्रातिस्विक, 'इंडिविड्यूअलिस्ट',[2] शख़्सी, इन्फ़िरादी, शांति और व्यवहार-त्याग, प्रयत्न-त्याग, कर्मत्याग, संबंधत्याग; अथवा सार्वजनिक, 'कलेक्टिविस्ट' 'सोशलिस्ट',[3] इज्माई, मुश्तरका, विश्वजनीन, सर्वजनीन, सुख समृद्धि के लिये, आत्मदर्शी का निरंतर प्रयत्न और व्यवहार-संशोधन। बुद्धदेव के बाद इसी मतभेद से हीनयान और महायान सम्प्रदायों के भेद बौद्धों में हो गये। तथा शंकराचार्य के बाद, हीनयान के समान आशय का, अर्थात् लोक-सेवा रूप व्यवहार के त्याग के भाव का, ज़ोर, 'दश-नामी' सन्यासियों वेदांतियों में अधिक हुआ; और रामानुजाचार्य ने महायान के सदृश लोक-सेवा लोक-सहायता के भाव को जगाया।

आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, का प्रयोग स्वार्थ ही है, अथवा परार्थ भी है, यह इस समय भारतवर्ष में बहुत विचारने की बात है। भागवत में, तथा अन्य पुराणों में, इस का निर्णय विस्पष्ट किया है, और आर्य-सिद्धांत यही जान पड़ता है, कि आत्मज्ञान, लोक-व्यवहार के शोधन के लिये, परमोपयोगी है, और इस शोधन के लिये उस का सतत उपयोग होना ही चाहिये।

गुण और दोष तो द्वन्द्वमय संसार में सदा एक दूसरे से बंधे हैं।

सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।
नात्यन्त गुणवत् किंचिन् नात्यंतं दोषवत्तथा। (म० भा०)

यह भाव भी ठीक है कि

यतो यतो निवर्त्तते, ततस्ततो विमुच्यते।

---

[1] Philosophy; science.

[2] Individualist.

[3] Collectivist; socialist.

ऋजुप्रकाशिका टीका लिखी थी अर्थात् इन्होंने वेदान्तके भामतीप्रस्थान तथा विवरणप्रस्थानपर अपना पाण्डित्य प्रकट किया था। प्रत्यक्स्वरूपाचार्यकी चित्सुखीकी टीका मानसनयनप्रसादिनी अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। प्रत्यक्स्वरूपका समय ज्ञात नहीं है परन्तु उनके ग्रन्थकी १५५२ सं० में लिखी गई एक प्रति मिलती है।

जनार्दनसर्वज्ञके पुत्र स्वामीन्द्रपूर्णके शिष्य विष्णुभट्ट उपाध्यायने पञ्चपादिकाविवरणके ऊपर ऋजुविवरण नामक एक टीकाकी रचना की थी। विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ, विद्यारण्यस्वामी प्रभृतिका नाम वेदान्तदर्शनके १४शतकके इतिहासमें विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है। विद्यातीर्थ (या विद्याशङ्कर) परमात्मतीर्थके शिष्य थे। उनका यद्यपि कोई विशिष्ट ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, तथापि माधवाचार्य या विद्यारण्य स्वामी और सायणाचार्यके ऊपर उनका जो असाधारण प्रभाव था उसीसे उनके महत्त्व तथा गौरवका अनुमान किया जा सकता है। भारतीतीर्थ भी एक प्रकारसे माधवाचार्यके गुरुस्थानीय ही थे। कुछ ग्रन्थ भारतीतीर्थ तथा माधवाचार्य दोनोंके संयुक्त नामसे प्रचलित हैं। भारतीतीर्थके परमानन्दतीर्थ और रामानन्दतीर्थ दो शिष्य थे। परमानन्दकी अवधूतगीतापर एक टीका है। और रामानन्दने विष्णुभट्टकृत ऋजुविवरणके ऊपर त्र्यन्तभावदीपिका नामक टीका बनाई थी। माधवाचार्य और उनके भ्राता सायणाचार्यके विषयमें बहुत वक्तव्य होनेपर भी स्थानाभावसे अधिक नहीं लिखा जा सकता *। माधवाचार्य संन्यास लेनेके पश्चात् विद्यारण्यस्वामी नामसे प्रख्यात हुए थे। इनके रचित वेदान्तविषयक ग्रन्थ ये हैं— विवरणप्रमेयसंग्रह, बृहदारण्यकवार्तिकसार, अनुभूतिप्रकाश, पञ्चदशी, जीवन्मुक्तिविवेक, वैयासिकन्यायमाला तथा ब्रह्मगीताटीका। इनमेंसे किसी-किसी ग्रन्थको बनानेमें उन्हें भारतीतीर्थका सहयोग प्राप्त हुआ था। विद्यारण्यके शिष्य रामकृष्णने पञ्चदशीपर जो टीका लिखी है, वह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। आनन्दाश्रमके शिष्य शङ्करानन्दकी कैवल्योपनिषत्, कौषीतकी उपनिषत्, नृसिंहतापनीय, ब्रह्म, नारायण आदि भिन्न-भिन्न उपनिषदोंपर दीपिका नामक टीका है।

---

* जिनको इस विषयमें विशेष जिज्ञासा हो उन्हें आर० नरसिंहाचार्य कृत Madhavacharya and his two brothers नामक उत्कृष्ट एवं विस्तृत प्रबन्ध Indian Antiquary नामक पत्रमें देखना चाहिये।

माधवमन्त्रीके समकालिक एक और माधवका पता लगता है। ये आङ्गिरस गोत्रके थे। इनके पिताका नाम चौण्डभट्ट और माताका नाम माचाम्बिका था। ये प्रसिद्ध शैवाचार्य काशीविलास क्रियाशक्ति पण्डितके शिष्य थे। ये प्रथम बुक्क तथा द्वितीय हरिहरके अधीन गोआका शासन करते थे। ये असाधारण योद्धा थे—'भुवनैकवीर' 'उपनिषन्मार्गप्रतिष्ठापनगुरु' ऐसी इनकी प्रसिद्धि थी। प्रसिद्ध नैयायिक उपस्कारकर्ता शङ्करमिश्रने खण्डनखण्डखाद्यके ऊपर एक टीका बनाई थी। यह प्रकाशित हो चुकी है। शङ्करने भेदरत्नप्रकाशकी रचना करके अद्वैतमतका खण्डन करनेका प्रयत्न किया था। इस प्रकार एक प्रसिद्ध नैयायिकका वेदान्तपर टीका लिखना उल्लेखयोग्य है। परमहंस परिव्राजकाचार्य आनन्दपूर्ण अथवा विद्यासागरका नाम सर्वत्र परिचित है। एकमात्र खण्डनकी टीकासे ही इनका यश चारों ओर फैल गया। इन्होंने और भी बहुतसे अद्वैतवेदान्तके ग्रन्थ बनाये थे, ब्रह्मसिद्धिकी टीका—भावशुद्धि, बृहदारण्यकवार्तिकटीका—न्यायकल्पलतिका, पञ्चपादिकाटीका, पञ्चपादिकाविवरणटीका—टीकारत्न, ये सब इनके प्रसिद्ध टीकाग्रन्थ हैं। इन्होंने न्यायचन्द्रिका नामक एक प्रकरण ग्रन्थ भी बनाया था। इस ग्रन्थके चार परिच्छेद हैं *। आनन्दपूर्णके समयका अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। इन्होंने अपने ग्रन्थमें वादीन्द्र, वासुदेवसूरि, विष्णुभट्ट, मानमनोहर, नीतितत्त्वाविर्भाव, न्यायलीलावती प्रभृति ग्रन्थकार तथा ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। शुद्धानन्दके शिष्य आनन्दके भी अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। प्रायः ये सभी ग्रन्थ टीकात्मक ही हैं। उनकी बनाई हुई शारीरकभाष्यकी टीका (न्यायनिर्णय), गीताभाष्यकी टीका, पञ्चीकरणविवरण, उपदेशसाहस्री-टीका, न्यायरत्नदीपावली-व्याख्या, वाक्यवृत्ति, त्रिपुटी आदि ग्रन्थोंकी टीका, मुख्य-मुख्य उपनिषदोंके भाष्योंकी व्याख्या विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है। इनकी उपदेशसाहस्री-टीकाकी एक प्रति काशी संस्कृतकालेज पुस्तकालयमें विद्यमान है। उक्त प्रतिका लिपिकाल शक संवत्सर १४७३ है। वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीकार प्रकाशानन्दने दृष्टिसृष्टिवादके ऊपर उत्कृष्ट ग्रन्थका निर्माणकर वेदान्तके मुख्य

---

* व्याख्यारत्नावली नामसे प्रसिद्ध विद्यासागरकी एक महाभारत टीका उपलब्ध होती है। काशिका-व्याकरणके ऊपर भी इनकी प्रक्रियामञ्जरी नामक एक टीका है।

सिद्धान्तका सर्वत्र युक्तिपूर्वक प्रचार करनेका प्रयत्न किया था। उनके शिष्य नानादीक्षितने उस ग्रन्थके ऊपर सिद्धान्तदीपिका नामक एक व्याख्या लिखी थी। ईशवीय सोलहवीं शताब्दीमें मधुसूदनसरस्वती तथा नृसिंहाश्रम अन्यान्य पण्डितोंसे अधिक प्रसिद्ध थे। मधुसूदनसरस्वतीके संक्षेपशारीरककी बात पहले कही जा चुकी है। उसे छोड़कर गीताटीका—गूढ़ार्थदीपिका, दशश्लोकी-टीका—सिद्धान्तबिन्दु, मुक्तिस्वरूपालोचनात्मक वेदान्तकल्पलतिका, अद्वैतरत्न-रक्षण आदि ग्रन्थ वेदान्तशास्त्रके इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। अद्वैतरत्नरक्षण शङ्कर-मिश्रके भेदरत्नका प्रतिवादरूप है। परन्तु मधुसूदनकी प्रधान कीर्ति है—अद्वैत-सिद्धि। यद्यपि यह ग्रन्थ मध्वसम्प्रदायके ग्रन्थविशेषके खण्डनके लिए बनाया गया था, तथापि साधारणतः अद्वैतसिद्धान्तको परिष्कृत नैयायिकरीतिसे जाननेके लिए यह सर्वश्रेष्ठ वेदान्तग्रन्थ है। मधुसूदनके भक्तिरसायन, महिम्नः-स्तोत्रकी टीका आदिकी आलोचना करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। मधु-सूदन काशीमें ही रहते थे—अपने समयमें संन्यासी सम्प्रदायके अग्रणी थे। जग-न्नाथाश्रम तथा गीर्वाणेन्द्र सरस्वतीके शिष्य नृसिंहाश्रमकी कीर्ति भी वेदान्तमें सर्वत्र व्याप्त है। उनका वेदान्ततत्त्वविवेक सं० १६०४ वि० अथवा १५४७ ई० में रचा गया था। नृसिंहाश्रमने इसपर दीपन नामक एक टीका स्वयं लिखी थी। इनकी तत्त्वबोधिनी–संक्षेपशारीरककी टीकाके विषयमें पहले ही कहा जा चुका है *। नृसिंहरचित अन्यान्य ग्रन्थोंमें अद्वैतदीपिका, भेदधिक्कार, पञ्चपादिकाटीका—वेदान्त-रत्नकोष, पञ्चपादिकाविवरणटीका—प्रकाशिका तथा अखण्डानन्दकृत तत्त्वदीपनकी टीका—भावप्रकाशिका विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। इनका नृसिंहविज्ञापन नामक एक छोटा ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। ये प्रथम अवस्थामें दक्षिणनिवासी थे, कुछ कालके पश्चात् काशी आये और यहीं रहने लगे। भट्टोजिदीक्षितके घरमें प्रायः सभी लोग इन्हींके शिष्य थे। प्रसिद्धि है कि विख्यात मीमांसक और शैवाचार्य अप्पयदीक्षितने भी इन्हींके प्रभावसे शाङ्कर मतका ग्रहण किया था। नृसिंहके शिष्य नारायणाश्रमने भेदधिक्कारके ऊपर सत्क्रिया † नामक एक टीका बनाई थी। नारायणके शिष्य माधवाश्रमने स्वानुभवादर्श ग्रन्थ बनाया था।

* यह ग्रन्थ काशी संस्कृतकालेज सीरीजसे प्रकाशित हो रहा है।

† भेदधिक्कारकी नृसिंहभट्टरचित भी एक टीका मिलती है। इसकी सं० १६६० वि० की लिखी एक प्रतिका पता चलता है।

सदानन्दका वेदान्तसार भी इसी शताब्दीके प्रारम्भमें बना था, ऐसा प्रतीत होता है।

कृष्णतीर्थके शिष्य रामतीर्थ मधुसूदनसरस्वतीके समकालिक थे। उन्होंने भी संक्षेपशारीरकपर एक टीका लिखी थी। उसके विषयमें पहले कहा जा चुका है। उनके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके नाम ये हैं—ब्रह्मसूत्रभाष्यटीका—शारीरक-रहस्यार्थप्रकाशिका, उपदेशसाहस्रीटीका—पदयोजनिका, वेदान्तसारटीका—विद्वन्मनोरञ्जिनी, दाक्षिणामूर्तिवार्तिकटीका इत्यादि। कृष्णानन्दसरस्वतीके शिष्य नृसिंहसरस्वतीने वेदान्तसारके ऊपर १५१० शकाब्दमें सुबोधिनी टीका बनाई थी। रङ्गराजाध्वरीन्द्र सुप्रसिद्ध मीमांसक अप्पयदीक्षितके पिता थे। इन्होंने अद्वैतविद्यामुकुर और पञ्चपादिकाविवरणदर्पण नामक दो वेदान्तग्रन्थ बनाये थे। दर्पणटीकाकी एक प्रति इस समय तञ्जोरमें है। वीरराघवकविने नील-कण्ठदीक्षितके पूर्वपुरुषोंका वर्णन करते हुए अच्चानदीक्षितवंशावली नामसे एक ग्रन्थ बनाया था। उसमें भी रङ्गराजके विवरणदर्पणका उल्लेख है। अच्चान नीलकण्ठके पिता और अप्पय दीक्षितके भ्राता थे। इसके बाद अप्पय दीक्षितका नाम लेना उचित प्रतीत होता है। मधुसूदनसरस्वतीने अद्वैतसिद्धिमें अप्पयदीक्षितका, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कहकर बड़े सम्मानके साथ, उल्लेख किया है। वस्तुतः अप्पयदीक्षितके सर्वोत्तम पाण्डित्यके विषयमें न किसीका मतभेद है और न हो सकता है। उन्होंने अनेक विषयोंपर बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं। इनके मुख्य-मुख्य वेदान्त ग्रन्थ ये हैं—न्यायरक्षामणि ब्रह्मसूत्र-टीका, कल्पतरुपरिमल—वेदान्तकल्पतरुकी व्याख्या, सिद्धान्तलेशसंग्रह* स्वतन्त्र प्रकरण ग्रन्थ। इन्होंने श्रीकण्ठभाष्यके ऊपर शिवार्कमणिदीपिका नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ रचा था। किन्तु यह ग्रन्थ शाङ्करमतका नहीं है। अप्पयदीक्षितके शिष्य भट्टोजिदीक्षित वैयाकरण तथा स्मार्त थे, ऐसी प्रसिद्धि है। परन्तु शाङ्करवेदान्तपर भी उन्होंने ग्रन्थ बनाये थे। इनके वेदान्त ग्रन्थोंके नाम हैं—वेदान्ततत्त्वकौस्तुभ और तत्त्वविवेकविवरण। तत्त्वकौस्तुभमें भट्टोजिदीक्षितने माध्वमत-खण्डन करनेका प्रयत्न किया है। यह ग्रन्थ केरलि वेंकटेन्द्रके आदेशसे लिखा गया था। इसके साथ अप्पयदीक्षितका भी सम्बन्ध

---

* इसपर अच्युत कृष्णनन्दकी श्रीकृष्णालङ्कार नामक एक टीका है।

था, ऐसा कोई कोई लोग हैं। उनका दूसरा ग्रन्थ विवरण उनके गुरु नृसिंहाश्रमके तत्त्वविवेककी टीका है। भट्टोजिदीक्षितके भ्राता रङ्गोजिभट्टके अद्वैतचिन्तामणि और अद्वैतशास्त्रसारोद्धार—इन दो ग्रन्थोंका पता चलता है*। ये भी नृसिंहाश्रमके ही शिष्य थे। महाभारतटीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धरका वेदान्तकतक अतिप्रसिद्ध सुरचित ग्रन्थ है। इनके नामसे आनन्दमयाधिकरणविचार नामक एक और ग्रन्थ मिलता है।

नृसिंहाश्रमके प्रशिष्य तथा वेलाङ्गुलिनिवासी वेंकटनाथके शिष्य धर्मराजाध्वरीन्द्रकी वेदान्तपरिभाषा सर्वत्र पठन-पाठनके कारण सुपरिचित है। धर्मराज प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने तत्त्वचिन्तामणिकी प्राचीन दस टीकाओंका खण्डन कर एक अभिनव टीका बनाई थी। उनके पुत्र रामकृष्णने अपने पिताके ग्रन्थपर वेदान्तशिखामणि नामक एक व्याख्यान लिखा था। रामकृष्णरचित-वेदान्तसार-टीका भी कहीं-कहीं मिलती है।

प्रसिद्ध मराठीभागवतके रचयिता भक्तवर एकनाथजीके प्रपौत्र, प्रथम आपदेवके पौत्र तथा प्रथम अनन्तदेवके पुत्र प्रसिद्ध मीमांसक मीमांसान्यायप्रकाशकार द्वितीय आपदेवने बालबोधिनी नामक वेदान्तसारपर एक टीका लिखी थी। ये आपदेव स्मृतिकौस्तुभकार द्वितीय अनन्तदेवके पिता थे।

नारायणतीर्थ तथा ब्रह्मानन्द सरस्वतीका नाम भी इस प्रसंगमें उल्लेखनीय है। दोनोंने मधुसूदनके सिद्धान्तबिन्दुपर टीकाएँ लिखी थीं जिनके नाम क्रमशः लघुव्याख्या और न्यायरत्नावली हैं। ये दोनों आचार्य काशीमें ही निवास करते थे। नारायणकी ब्रह्मसूत्रपर विभावना टीका भी मिलती है। उन्होंने विविध विषयोंपर बहुतसे ग्रन्थ बनाये। ब्रह्मानन्द बङ्गदेशीय थे, इसीलिए ये गौड़ब्रह्मानन्द नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका निवासस्थान भी काशीमें ही था। इन्होंने ब्रह्मसूत्रपर मुक्तावली नामक एक टीका लिखी थी। किन्तु इनकी मुख्य कृति है अद्वैतसिद्धिकी टीका—अद्वैतचन्द्रिका। इसके लघु और गुरुनामसे दो भेद उपलब्ध होते हैं। लघुचन्द्रिका सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। गुरुचन्द्रिकाका प्रकाशन भी मैसूरसे प्रारम्भ हो गया है। ब्रह्मानन्दकृत अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन नामक ग्रन्थ काशी संस्कृत कालेजसे प्रकाशित हो चुका है।

काश्मीरके सदानन्द ब्रह्मानन्द तथा नारायणके शिष्य थे उनकी अद्वैतब्रह्मसिद्धिका नाम वेदान्तके इतिहासमें प्रसिद्ध ही है। परन्तु इसके अतिरिक्त

उन्होंने और भी अच्छे अच्छे ग्रन्थ बनाये थे। स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश और ईश्वरवाद ये तीन ग्रन्थ भी उन्हींकी कृतियाँ हैं।

शङ्कराचार्यके समयसे रत्नप्रभाकारके निकटवर्तीकाल तकका अद्वैतवेदान्त-शास्त्रका यही संक्षिप्त इतिहास है।

रत्नप्रभाकार—

भाष्यरत्नप्रभाकार गोविन्दानन्द किस समयमें आविर्भूत हुए थे, इसका ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है। परन्तु इतना निश्चित है कि वे सोलहवीं शताब्दीके पश्चात् हुए थे, क्योंकि उन्होंने नृसिंहाश्रमके वचन अपने ग्रन्थमें उद्धृत किये हैं। नृसिंहाश्रम १५४७ ई० में विद्यमान थे—उसी वर्ष उनका वेदान्ततत्त्वविवेक सम्पूर्ण हुआ था। अत एव गोविन्दानन्द सत्रहवीं शताब्दीके माने जा सकते हैं। गोविन्द गोपालसरस्वतीके शिष्य थे और नियमसे काशीमें रहते थे। रत्नप्रभाटीकाकी रचना भी काशीमें ही हुई थी यह बात उनके मङ्गलाचरणस्थ ढुण्ढिराज और काशिकेश आदिके नमस्कारसे स्पष्ट ही प्रतीत होती है। गोविन्दके रामानन्दसरस्वती नामसे प्रसिद्ध एक शिष्य थे, उन्होंने ब्रह्मसूत्रके ऊपर ब्रह्मामृतवर्षिणी नामकी वृत्ति तथा विवरणकी विवरणोपन्यास नामकी टीका लिखी थी * (द्रष्टव्य—वेदान्तदर्शनका इतिहास पृ० ७९०)। गोविन्द तथा रामानन्द दोनों ही श्रीराचन्द्रजीके उपासक थे। गोविन्द और लघुचन्द्रिकाकार ब्रह्मानन्द इन दोनोंने ही शिवरामाचार्यसे ज्ञान प्राप्त किया था †। यदि ब्रह्मानन्द द्वारा उल्लिखित शिवराम गोविन्दके ज्ञानदाता शिवरामसे अभिन्न माने जायँ तो गोविन्दानन्दका समय १७वीं शताब्दीके बदले अठारहवीं शताब्दी मानना चाहिए। रत्नप्रभापर अद्वैतानन्दके शिष्य पूर्णप्रकाशानन्द सरस्वतीकी चतुःसूत्रीपर्यन्त एक टीका भी है ‡।

---

* कोई कोई लोग रामानन्दको ही रत्नप्रभाका रचयिता समझते हैं (द्रष्टव्य—आनन्दज्ञानकृततर्कसंग्रहकी भूमिका बड़ोदा संस्करण पृ० १९)।

† अप्पयदीक्षितने सिद्धान्तलेशसंग्रहमें एक स्थानपर विवरणप्रमेयसंग्रहको ही विरणोपन्यास कहा है, परन्तु रामानन्दका ग्रन्थ उससे भिन्न है।

‡ चौखम्बासंस्कृतसेरीजमें प्रकाशित है।

अनुवादक परिचय—

इस प्रसङ्गमें पाठकोंको शाङ्करभाष्य तथा रत्नप्रभाके अनुवादक यतिवर श्रीभोलेबाबाजीके जीवनचरितके विषयमें भी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। निःस्पृह त्यागी महात्माओंका जीवनचरित प्राप्त करना कितना कठिन कार्य है, यह किसीसे छिपा नहीं है। तथापि संक्षेपतः जो कुछ हमें उपलब्ध हो सका है, उसीको पाठकोंकी सेवामें समर्पण कर हम सन्तोष करते हैं।

पूज्य भोलेबाबाजीका जीवन आरम्भसे ही उज्वल, सत्सङ्गनिरत, सदाचारपूत एवं भक्तिमय रहा। पूर्वावस्थामें कुटुम्बपरिपालनका सारा भार अपने ऊपर होनेपर भी आप अपने पारलौकिक कर्तव्यसे तनिक भी पश्चात्पद नहीं हुए। कुटुम्बपालनके लिए बड़ी सचाईके साथ सरकारी नौकरी करते थे उससे जो समय बचता था उसे नित्यकर्म, साधुमाहात्माओंके सत्सङ्ग, प्रवचन, योगाभ्यास, धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थोंके पारायणमें व्यतीत करते थे।

एक समय एक विरक्त महात्मा आपकी जन्मभूमिमें पधारे। आप उनके आनेकी खबर पाकर उनके पास पहुँचे। उनके दर्शन तथा वार्तालापसे आपको परम सन्तोष हुआ। आप नित्य उनके सत्सङ्गका लाभ उठाने लगे। थोड़े ही समयमें आपने महात्माजीकी कृपा प्राप्त कर ली। ये महात्मा और कोई नहीं विश्ववन्द्य परमहंस स्वामी योगानन्द थे। आलूका प्रधान आहार होनेके कारण इनको लोग आलूवाले बाबा कहा करते थे। आप अपने समयके उच्चकोटिके योगियोंमेंसे एक और साथ-साथ ऊँचे कोटिके ज्ञानी भी थे। इनके आश्रममें नित्य गीताके प्रवचनके साथ-साथ उत्कृष्ट वेदान्तचर्चा होती थी। अधिकारियोंको योगाभ्यास भी कराया जाता था। हमारे अनुवादक महोदय इन अधिकारियोंमें सर्वप्रथम थे। इस प्रवृत्तिसे केवल स्थानीय लोगोंको ही लाभ पहुँचता था, अत एव दूरवर्तियोंके लाभार्थ वेदान्तकेसरी नामक एक आध्यात्मिक मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया गया। इस पत्रका सम्पादन तथा सञ्चालनका सम्पूर्ण भार श्रीभोलेबाबाजीके ऊपर पड़ा। अपने समयके आध्यात्मिक पत्रोंमें वह उच्च कोटिका पत्र गिना जाता था। बहुत वर्षों तक आपने बड़ी तत्परतासे उसका सञ्चालन तथा सम्पादन किया। अन्यान्य पत्रोंमें भक्तिमय तथा आध्यात्मिक लेख भी समय समयपर आप देते रहे। उसी

समय वेदान्तदर्शन आदिका अनुवाद भी आपने किया, जो वेदान्त केसरी-कार्यालसे प्रकाशित हो चुका है।

तत्पश्चात् संन्यास लेकर आप अनूपशहर पुण्यसलिला गङ्गाजीके तटपर चले आये तबसे वहीं निवास कर रहे हैं। कल्याण, श्रेय, वेदान्तकेसरी, भक्ति आदि अनेक पत्र पत्रिकाओंमें लेख लिखकर कल्याणाकाङ्क्षियोंका आप जैसा उपकार कर रहे हैं वह किसीसे छिपा नहीं हैं। आपके पास रहकर आपके सत्संगसे भी बहुत सज्जन लाभ उठाते रहते हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक सदा अध्यात्मविद्याका उपदेश देते रहते हैं। जिन्होंने आपका थोड़ा भी सत्संग किया होगा वे आपके ज्ञानपर, आपकी निष्ठापर, आपकी त्यागवृत्तिपर, आपकी शम-दम आदि नियमपरायणतापर मुग्ध हुऐ बिना न रहेंगे।

यदि श्रीयुत पण्डित चण्डीप्रसादशुक्लजी तथा पं० श्रीकृष्णपन्तजी मनोयोग तथा परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थका सम्पादन न करते तो यह संस्करण इतना महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी न होता। अत एव इस संस्करणको महत्त्वपूर्ण बनानेमें उक्त सज्जनोंका परिश्रम भी श्लाघनीय है।

गवर्नमेन्ट संस्कृतकालेज,
बनारस
११ जून १९३६

गोपीनाथ कविराज

अच्युतग्रन्थमालासे प्रकाशित पुस्तकोंका सूचीपत्र

(क) विभाग

१–भगवन्नामकौमुदी—[भगवन्नामकी महिमाका प्रतिपादक अनुपम ग्रन्थ] मीमांसाके धुरन्धर विद्वान् श्रीलक्ष्मीधरकी कृति, अनन्तदेवरचित 'प्रकाश' टीकासहित। सम्पादक–आचार्यवर गोस्वामी दामोदर शास्त्री।

पृ० सं० १५०, मू.—आ. १०

२–भक्तिरसायन—[भक्तिस्वरूपका परिचायक अत्युत्तम ग्रन्थ] यतिवर श्रीमधुसूदन सरस्वतीरचित प्रथम उल्लासमें ग्रन्थकाररचित शेष दो उल्लासोंमें आचार्यवर गोस्वामी दामोदर शास्त्री रचित टीकासे विभूषित। सं०—आचार्यवर गोस्वामी दामोदर शास्त्री। पृ० सं० १७०, मू.–आ. १२

३–शुल्बसूत्र—[कात्यायनश्रौतसूत्रका परिशिष्ट अंश] वेदाचार्य पं० विद्याधर गौड़की बनाई हुई सरलवृत्तिसहित। सं०–वेदाचार्य विद्याधर गौड़।

पृ० सं० ६०, मू.—आ. ४

४–कात्यायनश्रौतसूत्र—[इसमें दर्शपूर्णमाससे लेकर अश्वमेध, पितृमेधपर्यन्त कितने ही यज्ञोंकी विधियां साङ्गोपाङ्ग वर्णित हैं] महर्षि कात्यायनप्रणीत, वेदाचार्य पं० विद्याधर गौड़ द्वारा रचित सुसरल वृत्तिसे अलंकृत। सं०–वेदाचार्य विद्याधर गौड़। पृ० सं० लगभग १०००, मू. –रु. ६

५–प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि—(प्रथम भाग) [शाङ्करभाष्यानुसार वेदान्तका सुसरल पद्यमय ग्रन्थ] श्रीसदानन्द व्यासविरचित, ग्रन्थकाररचित सरल संस्कृत टीकासहित। सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री।

पृ० सं० ३४०, मू.–रु. २

६–भक्तिरसामृतसिन्धु—[भक्तिरससे परिपूर्ण यह ग्रन्थ सचमुच पीयूषसिन्धु है] श्रीरूप गोस्वामीप्रणीत, श्रीजीव गोस्वामीप्रणीत दुर्गमसङ्गमनी टीकासहित। सं०–आचार्यवर गोस्वामी दामोदर शास्त्री। पृ० सं० ६२५, मू०–रु०३

७–प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि—(द्वितीय भाग) पृ० सं० ४५० मू०–रु. २ आ. ४

८–तिथ्यर्क—[तिथियोंके निर्णय आदिपर अपूर्व एवं प्रामाणिक ग्रन्थ] श्रीदिवाकर विरचित। सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री।

पृ० सं० ३४०, मू०–रु० १ आ०८

९—**परमार्थसार**—[वेदान्तका अति प्राचीन ग्रन्थ] श्रीपतञ्जलि भगवान्‌की कृति, प्राचीन टीका तथा टिप्पणीसे विभूषित । सं०—न्यायव्याकरणाचार्य श्रीसूर्यनारायणशुक्ल । पृ० सं० १००, मू.—आ. ६

१०—**प्रेमपत्तन**—[श्रीकृष्णभक्तिसे सराबोर चैतन्य-सम्प्रदायका अपूर्व ग्रन्थ] भक्तवर रसिकोत्तंसकी कृति तथा अद्भुतप्रणीत टीकासे अलंकृत । सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री । पृ० सं० २३०, मू.—रु.१

(ख) विभाग

१—**खण्डनखण्डखाद्य**—कवितार्किकशिरोमणि श्रीहर्षरचित, पंडितवर श्रीचण्डीप्रसाद शुक्ल विरचित भाषानुवादसे विभूषित ।
पृ० सं० ४३५ (बड़ा आकार) मू.—रु. २ आ. १२

२—**काशी-केदार-माहात्म्य**—[ब्रह्मवैवर्तपुराणान्तर्गत] साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्द त्रिपाठीद्वारा विरचित भाषानुवादसहित । सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री । पृ० सं० २६+६०४, मू.—रु. २ आ. ८

३—**सिद्धान्तबिन्दु**—(वेदान्तका प्रमेयबहुल अपूर्व ग्रन्थ) आचार्यप्रवर श्रीमधुसूदन सरस्वतीविरचित, भाषानुवाद तथा टिप्पणीसे विभूषित । सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री । पृ० सं २८०, मू. रु. १ आ. ६

४—**प्रकरणपञ्चक**—भगवान् शङ्कराचार्यके आत्मबोध, प्रौढानुभूति, तत्त्वोपदेश आदि ५ प्रकरण-ग्रन्थोंका भाषानुवादसहित संग्रह । सं०—साहित्याचार्य श्रीकृष्ण पन्त शास्त्री । पृ० सं० १३१, मू.—आ. ८

यन्त्रस्थ ग्रन्थ—

१ षट्सन्दर्भ, विविध टीकाओंसे विभूषित ।

मिलनेका पता—

(१) अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालय, काशी ।
(२) गीताप्रेस, गोरखपुर ।

नोट—अच्युतग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहकोंको उक्त सभी पुस्तकें पौन मूल्यपर दी जाती हैं । 'अच्युत' मासिक पत्रके स्थायी ग्राहक (ख) विभागके स्थायी ग्राहक समझे जायँगे ।

स ... का भाषा-

नुवाद ... देश्य है।

(१) 'अच्युत' प्रतिमास पूर्णिमाको प्रकाशित होता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य भारत के लिए ६) रु० और विदेशके लिए ८) रु० है। एक संख्याका मूल्य ।।) है।

(३) ग्राहकोंको मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजनेमें सुविधा होगी। वी० पी० द्वारा मँगानेसे रजिस्टरीका व्यय उनके जिम्मे अधिक पड़ जायगा।

(४) मनीआर्डरसे रुपये भेजनेवाले ग्राहक महाशयोंको कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, अपना पूरा पता, नये ग्राहकोंको 'नये ग्राहक' और पुराने ग्राहकोंको अपना ग्राहक-नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख देना चाहिए।

(५) उत्तरके लिए जवाबी पोस्टकार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) जिन महाशयोंको अपना पता बदलवाना हो, उन्हें कार्यालयको पता बदलवानेके विषयमें पत्र लिखते समय अपना पुराना पता तथा ग्राहक-नम्बर लिखना नहीं भूलना चाहिए।

व्यवस्थापक

अच्युत-ग्रन्थमाला-कार्यालय,

ललिताघाट, बनारस।

Regd. No. A. 2426

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

Cover printed at the Indian Press, Ltd.,
Benares.

'मद्-भाव' को, 'मेरे' स्वभाव को, परमात्म-भाव, ब्रह्मभाव, सर्वव्यापकत्व भाव को, प्राप्त होता है, ब्रह्म में लीन हो जाता है।

धर्मसार, धर्मसर्वस्व, की नीवी—सर्वव्यापी चैतन्य आत्मा

ओर एक तत्व की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। सब धर्मों, सब मजहबों, का यह निर्विवाद सिद्धांत है कि,

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिंतयेत्॥ (म० भा०)
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (गीता)

"जैसा अपने लिये चाहो वैसा दूसरे के लिये भी चाहो। जो अपने लिये न चाहो वह दूसरे के लिये भी मत चाहो। जो अपने ऐसा सब का सुख-दुःख समझता है, वही सच्चा, परम काष्ठा का, योगी है।"

अफ़ज़लुल् ईमानिउन् तोहिब्बा लिन्नासे मा तोहिब्बो
लि-नफ़्सिका; व तकरहो लहुम् मा तकरहो लि-नफ़्सिका॥ (हदीस)
डू अन्टु अदर्स ऐज़ यी वुड दैट् दे शुड् डू अन्टु यू। दिस इज़् दि लॉ
आफ़् दि ला ऐण्ड दि प्राफ़ेट्स॥ (बाइबल)

आचार नीति के इस व्यापक सिद्धांत को, जैसे मनु, कृष्ण, व्यास आदि ने कहा है, वैसे ही बुद्ध, जरथुस्त्र, वर्धमान महावीर जिन, मूसा, ईसा मुहम्मद आदि अवतारों, महर्षियों, पैगम्बरों, मसीहों, रसूलों, नबियों, ऋषियों ने भी कहा है। केवल भाषा का भेद है, अर्थ का अणुमात्र भी भेद नहीं है। सिद्धान्त को कह कर सब यह कहते हैं कि 'यही धर्मसर्वस्व है', यही सब से ऊंचा 'अफ़ज़ल्' ईमान है, यही 'होल' अर्थात् समग्र धर्म और उपदेश है।

पर इस आचार के सिद्धान्त का हेतु क्या है? इसका हेतु एकमात्र आत्मज्ञान का परम सिद्धान्त ही है, अर्थात् एक परमात्मा, एक चैतन्य, सब में व्याप्त है। यदि ऐसा न हो, तो कोई भी स्थिर हेतु उस आचार-सिद्धान्त के लिये नहीं मिलता। यदि उपकर्ता वा अपकर्ता, उपकृत वा अपकृत से, सर्वथा भिन्न, सर्वथा पृथक्, होता, तो वह उसका उपकार वा अपकार ही न कर सकता, न लौट कर उसका फल उसको मिल सकता। दोनों सदा सम्बद्ध हैं; सब में एक ही चेतना व्याप्त है, इसी कारण से किसी को सुख वा दुःख देना, पुण्य वा पाप करना, अंततः अपने को ही सुख वा दुःख देना है, अपने ही साथ पुण्य वा पाप करना है। इसी लिये पुण्य वा पाप का फल अवश्य मिलता ही है; क्योंकि सचमुच कोई दूसरा तो है ही नहीं, जिसको सुख या दुःख दिया गया हो; 'दूसरा'—यह भ्रम है। भ्रम से 'दूसरा' समझ के 'दूसरे'

उतना आगमन, जितनी रात उतना दिन, जितना उजेला उतना अँधेरा, जितना लहना उतना पावना, जितना लेना उतना देना, जितना रोना उतना हँसना, जितना सुख उतना दुःख, जितना जीना उतना मरना, जितना एक ओर जाना उतना दूसरी ओर जाना, घूम फिर कर हिसाब बराबर हो जाना, संकलन व्यवकलन, गुणन विभाजन, मिल कर शून्य हो जाना—यही मुख्य नियम है। तभी तो दोनों को मिलाकर, दोनों का परस्पर आहार विहार परिहार संहार कराकर, सदा निर्विकार, महाशून्य, महाचैतन्य, एकरस, क्रमातीत, 'ला-शै', 'ला-ब-शर्त्ति-शै', 'ब-शर्त्ति-ला-शै', 'ज़ात-ला-सिफ़ात', 'ज़ाति-सादिज', सिद्ध होता है; और तभी अनन्त असंख्य द्वन्द्वों के दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के, जोड़ों के, 'ज़ि़ईन' के, ज़ौज़ैन' के, क्रमिक प्रवर्त्तन, निवर्त्तन, विवर्त्तन, आवर्त्तन, अनुवर्त्तन से, संसार में सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा, प्रतिक्षण, प्रतिस्थल, प्रतिप्रकार, कुटिल गमन, चक्रवद् भ्रमण, भ्रम', देख पड़ता है। शरीर में रुधिर चक्कर खा रहा है आकाश में 'ब्रह्म के अण्ड', पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा चक्कर खा रहे हैं, श्वास-प्रश्वास. जागरण-शयन, आहरण-विसर्जन दिन-रात, शरद्-हेमन्तौ, शिशिर-वसन्तौ, वर्षा-ग्रीष्मौ, चक्कर खा रहे हैं।

संसार के जितने भी, जो भी, नियम हैं, वे सब, इसी क्रिया-प्रतिक्रिया, द्वंद्वी-प्रतिद्वन्द्वी, की तुल्यता और चक्रवद्भ्रमण रूपी मुख्य नियम के, जहाँ से चलना वहीं घूमकर लौटने के, अवांतर रूप ही हैं।

मुख्य द्वंद्व, मानव-जीवन में, जन्म-मरण, वृद्धि-क्षय, जागरण-स्वपन, सुख-दुःख हैं। इनके अवांतर मुख्य द्वन्द्व, जीवात्मा की व्यावहारिक दृष्टि से, ज्ञानांग में सत्य-असत्य (तथ्य-मिथ्या), इच्छांग में काम-क्रोध (राग-द्वेष), क्रियांग में पुण्य-पाप उपकार-अपकार, धर्म-अधर्म) हैं। परमात्मा की पारमार्थिक दृष्टि से, "द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुख-दुःख-संज्ञैः" की दृष्टि से, 'चिद्-अंग' में, सत्यासत्य के परे, और दोनों को संग्राहक, मा-या' ('ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'); 'आनंद्-अंग' में, राग-द्वेष के परे, 'शांति' ('योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते'); 'सद्-अंग' में, पुण्य-पाप से परे, 'पूर्णता', 'निष्क्रियता', (पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते', 'न पुण्यं न च वा पापं इत्येषा परमार्थता'।

पारमार्थिक 'अभ्यास-वैराग्य' के द्वन्द्व से सांसारिक 'आवरण-विक्षेप' द्वन्द्वों का जय

मायादेवी अर्थात् 'अविद्या-अस्मिता' की दो शक्तियां, 'आवरण'-और-'विक्षेप'; इन शक्तियों के प्रथम मुख्य सन्तान कहिये, अक-सक कहिये,

उनकी पत्नी पार्वती; सिर पर से 'गंगा' का प्रवाह, जो आगे चल के, 'त्रिवेणी' हो गई; उस जगत्पावनी गङ्गा पर 'अविमुक्त' क्षेत्र, काशी, की स्थिति; वहाँ शिव का 'अविमुक्त निरन्तर निवास; उस काशी वाराणसी में पहुँच कर जो जीव, शरीर त्याग के अनन्तर, 'ब्रह्मनाल' नामक वीथी (गली) से, 'मणिकर्णिका' तक पहुँचै, उसको 'तारक' मन्त्र का उपदेश हो, और 'काश्यां मरणान् मुक्तिः', 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः', वह मोक्ष पावै। इत्यादि।

उदाहरण-रूपेण, बारह मुख्य रूपक ऊपर कहे। सैकड़ों अन्य मुख्य और गौण रूपक, ऐसे ही, इतिहास-पुराण में भरे हैं। जो थोड़ा भी विचार कर सकते हैं, उनके लिये स्पष्ट है कि यह सब आख्यान, किसी विशेष अभिप्राय से, बुद्धिपूर्वक, प्रोद्यः-च-दानिस्तः, रचे हुए हैं; स्वाभाविक, प्राकृतिक, इतिवृत्तों के वर्णन, नहीं हैं। इनके अक्षरार्थ को वास्तविक मनवाने का यत्न करना, मूर्खता फैलाने वाला कपट और दम्भ है; तथा मान लेना, अंध-श्रद्धा और मूढ़-ग्राह है। पर सैकड़ों वर्षों से, भारतवर्ष में, यही देख पड़ रहा है। एक ओर ऐसे छल कपट से, और दूसरी ओर ऐसी अंध-श्रद्धा से, सद्‌बुद्धि, सज्ज्ञान, सद्‌भाव, सदिच्छा, सद्‌व्यवहार का, कितना ह्रास हुआ है—यह भारत जनता की हीन-दीन दशा से, अधःपात से, ही प्रकट है। जब उत्तमांग-स्थानीय, धर्माधिकारी, धर्म-नेता, धर्म-व्याख्याता, किसी देश, किसी समाज, में, राजस-तामस दुर्बुद्धि-दुःशील-दुश्चरित्र का नमूना सबके आगे रक्खें, तो क्यों न जनता पर आपत्ति-विपत्ति आवै? यूरोप में भी, तथा अन्य देशों में भी, ऐसे ही कारणों से, जब पुरोहितों और राजाओं की, अर्थात् 'यूरोपीय ब्राह्मणों और क्षत्रियों' की, बुद्धि भ्रष्ट हुई, तब बड़े-बड़े विप्लव हुए हैं।

> अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पंडितम्मन्यमानाः।
> जंघन्यमानाः परियंति मूढाः, अंधेनैव नीयमाना यथांधाः॥
> अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
> सर्वार्थान् विपरीतांश्च, बुद्धिः सा, पार्थ! तामसी॥ (गीता)

"जब अन्धों के नेता भी अन्धे हों, अविद्याग्रस्त हों, पर स्वयं बड़े धीर-वीर पंडित होने का अभिमान करते हों, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझते समझाते हों, तब नेता और नीत दोनों ही अवश्य नष्ट होंगे।"

रूपकों का अर्थ

ऊपर कहे हुए, तथा अन्य रूपकों में से कुछ के वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक आदि व्याख्याओं का संकेत, किसी-किसी की पूरी व्याख्या, पुराण इतिहास निरुक्त आदि में किया है; पर ऐसे कोनों में, और ऐसे थोड़े में, कि उनकी ओर साधारण पाठक-पठक का ध्यान